१ यौगिक चर्चा १४ १० १९७२

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परा से ही उस महान वैदिक ज्ञान का प्रसारण होता रहता है, जिस ज्ञान को वेदों ने, ऋषि-मुनियों ने धेनु कहा है। यह दुही जाती है। धेनु, विद्या को भी कहा गया है, हम जब परमपिता परमात्मा के समीप जाना चाहते हैं। क्योंकि प्रत्येक मानव की तो ऐसी आकांक्षा होती है। संसार में मानव इस उदर-पूर्ति के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न करता रहता है। परन्तु मानव की आत्मा के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न करता रहता है। परन्तु मानव की आत्मा तो प्रायः पिपासु रहती ही है। आत्मा को भी यह उत्सुकता होती है कि मैं उस ब्रह्म के समीप पहुंचु और सखा को प्राप्त करूं।

बेटा! तुम्हें प्रतीत होगा जब याग करते हैं, तो यज्ञशाला में उस अग्नि की गति ऊर्ध्व होती हैं, उसकी ऊर्ध्व गति क्यों होती है? क्योंकि उसका जो सखा है, वह ऊर्ध्व दिशा में रहने वाला है। बेटा! सूर्य के आँगन को अग्नि का प्रवाह रहता है। द्यौ-मण्डल की ओर रहता हैं। इस प्रकार प्राणीमात्र का आत्मा पिपासु रहता है और वह इस पिपासा में परिणत रहता है कि मैं आत्मा के ज्ञान को प्राप्त करूं। क्योंकि आत्मज्ञान के लिए हमें वास्तव में अपनी उस पवित्र धारा को अपनाना है, जिसको अपनाने के पश्चात् हमारा जीवन प्रायः पवित्रता में परिणत हो जाता है।

आओ, मेरे प्यारे! मैं आज अधिक विवेचना तो नहीं प्रकट करूंगा, परन्तु आज का हमारा वेद-पाठ क्या कह रहा है? हमारी वेदों की परम्परा हमें कौन-सी आज्ञा दे रही है? आज हम किस मार्ग को अपनाना चाहते हैं? बेटा! उस मार्ग को अपनाने के लिए हम वास्तव में पिपासु रहते हैं, क्योंकि यौगिक आत्माएं योग के द्वारा ऊर्ध्वगति को प्राप्त होती हैं।

बेटा! मुझे एक वाक्य स्मरण आ रहा है आज। बहुत परम्परा का एक शब्द है, यह ऋषि-मुनियों का एक समूह एकत्रित था। उस समय महर्षि मुद्गल जी के और शण्डिल्य जी के दो प्रश्न थे। उन्होंने यह कहा कि - हे ब्रह्मवेत्ताओं! तुम ब्रह्म को जानते हो। परन्तु मैं एक वाक्य जानना चाहता हूँ। महर्षि भृगु और महात्मा जमदग्नि बोले - बोलो, भगवन! तुम्हारा क्या प्रश्न है? उन्होंने कहा - भगवन्! मैं यह जानना चाहता हूँ कि संसार में योग की कितनी आभाएं हैं, और योग के द्वारा योगी अपनी आत्मा को कहाँ-कहाँ ले जा सकता है? तो यह मैं जानना चाहता हूँ। बेटा! ऋषि-मुनियों का मस्तिष्क तो ऊर्ध्वगति में जाने वाला था। परन्तु महर्षि भृगु और महात्मा जमदग्नि की उड़ान तो बहुत ऊंची रहती थी। देवर्षि नारद मुनि भी उस सभा में विराजमान थे। क्योंकि देवर्षि नारद मुनि चित्त के ऊपर अपना संयम करने वाले रहते थे। जो योगी चित्त के ऊपर अपना संयम करने वाले रहते थे। जो योगी चित्त के ऊपर संयम कर लेता है, अहंकार के ऊपर संयम कर लेता है, उसका अहंकार चित्त का वाहन बन करके उसका आत्मा अन्तरिक्ष में रमण करता है।

योग की गतियाँ

आज मैं तुम्हें निर्णय करा रहा हूँ कि योगी की आत्मा का क्या-क्या कार्य रहता है। उस समय महर्षि भृगु जी ने और महात्मा जमदग्नि जी ने और महर्षि दधीचि और सोमकृति ऋषि महाराज इनके बेटे का विचार विनिमय होने लगा। परन्तु महर्षि शाण्डिल्य मुनि ने कहा कि हम यह जानना चाहते हैं कि योग की कितनी परिक्रियाएं होती हैं? अब, बेटा! परिक्रियाओं के ऊपर उनका विचार विनिमय प्रारम्भ होने लगा। महर्षि भृगु बोले - हे महर्षि शाण्डिल्य जी! अंगिरस गोत्र में उत्पन्न होने वाले ऋषि! हम यह जानना चाहते हैं कि तुम योग की कितनी गति जानते हो? महर्षि शाण्डिल्य बोले कि हम प्रायः योग की १२ प्रकार की गति स्वीकार करते हैं। महात्मा जमदग्नि से

प्रश्न किया गया तो महात्मा जमदग्नि बोले कि हम इसकी कुछ और गति मानते हैं। आस्वेति ऋषि ने कहा कि हम इनसे और भी अधिक गति जानते है। परन्तु महर्षि भृगु ने कहा कि योग की गति ३६ प्रकार की होती है। वह जो ३६ प्रकार की गतियाँ होती है, वह आत्मा का सूक्ष्म रूप है।

योग और तीन प्रकार

आत्मा का, योग का जो प्रारम्भ है वह, बेटा! तीन प्रकार के शरीरों को जानने का नाम, योग कहलाया गया है। सबसे प्रथम स्थूल, उसके पश्चात् सूक्ष्म कहलाया गया है। बेटा! हमारे यहाँ सूक्ष्म को ऐसा माना गया है, जो कारण शरीर है, उसमें भी पंच-महाभूतों का मिश्रण रहता है क्योंकि वह पंच-महाभूतों की सूक्ष्मगति कहलाई जाती है। इसी प्रकार जो सूक्ष्म शरीर है, इसमें जब सतोगुण अधिक प्रबल हो जाता है और जब सूक्ष्म गति इसकी प्राप्त होती है, तो यौगिक आत्माओं में रमण करने लगता है। हमारे यहाँ कुछ ऐसा माना गया है, मानव की जितनी भी तमोगुण प्रवृत्तियाँ होती हैं, उतना ही मानव आवागमन में परिणत रहता है। जितनी भी तमोगुण, रजोगुण प्रवृत्तियाँ रहती हैं, उतना ही आवागमन निकट होता है। परन्तु जिसका सतोगुणी प्रवाह ऊँचा होता है, सतोगुण की उड़ान अधिक होती है, यौगिक उड़ान उसके साथ में होती है, तो कहा करते हैं कि उनका जो आत्मा है वह आन्तरिक में मोक्ष आत्माओं, देव-आत्माओं के साथ वह रमण करता रहता है। ऐसे आत्मा पुनः संसार में आने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

अवतारवाद का सिद्धान्त

तो विचार यह, मुनिवरों! कुछ आत्मा ऐसे होते है जो मोक्ष के निकट होते है। परन्तु जब वह प्रकृति के इस चित्त को भ्रष्ट दृष्टिपात करते है, उस समय मोक्ष के निकट वाले आत्मा प्रायः संसार में जन्म ले लेते हैं और वे संसार में जन्म ले करके संसार में अपना कुछ कार्य करके पुनः उसी गति को प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि वह स्थूल जगत् का जो कर्म है, उन आत्माओं को लिपायमान नहीं कर सकता। उन आत्माओं के लिपायमान न होने के कारण इस लोक में ऊँचे से ऊँचा कर्म करके पुनः वे आत्मा उसी गति को प्राप्त हो जाता हैं। क्योंकि उनको रजोगुण और तमोगुण कदापि नहीं व्यापता। इसलिए क्योंकि उनको स्वार्थ नहीं होता, वे निस्वार्थ होते हैं। उनको, मुनिवरों! अभिमान नहीं होता। उनके लिए पर्वत और राज शैय्या एक सी होती है। ऐसे महापुरूषों को संसार का कर्म नहीं व्यापता।

आत्मा की अबाध गति का मार्ग

मेरे प्यारे! देखो, महात्मा महर्षि भृगु ने कहा कि आत्मा का जो मार्ग है, वह एक ऐसा सूक्ष्म मार्ग हे जिसको जानने के लिए तुम्हें अनुभव की आवश्यकता है। प्रायः मानव यह उच्चारण करता रहता है कि आज मैं योग के मार्ग में जाना चाहता हूँ। मेरे प्यारे महानन्द जी प्रायः प्रश्न करते रहते हैं। आज भी इनका प्रश्न है कि आत्मा की अबाध गति किस प्रकार होती है? हमने बहुत पुरातन काल में अपने प्यारे पुत्र के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा था कि जैसे भौतिक विज्ञानवेत्ता शब्दों के यानों का निर्माण करता है, इसी प्रकार, मुनिवरों! देखो, योगी, यौगिक क्षेत्र में, योगियों के समाज में विराजमान हो करके वह उस प्राण के द्वारा अव्याहत गति से अपने शब्दों को संसार में प्रसारण कर सकता है। मेरे प्यारे! नारदमुनि भी इस वाक्य को स्वीकार करते थे। वह वैदिक साहित्य हमें बारम्बार आज्ञा देता है।

आत्मा और आवरण

आज के वेद-पाठ में आत्मा का बड़ा सुन्दर वर्णन आ रहा था। आत्मा जब इन नाना प्रकार के आवरणों से दूर हो जाता है, यह जो आवरण हैं, जिनको मल-विक्षेप-आवरण कहते हैं। तीन प्रकार के विक्षेप हैं। जब ये आत्मा से दूर हो जाते हैं तब यह आत्मा का आवागमन, आत्मा की प्रतिभा, आत्मा की उड़ान ऊँची बन जाती है।

मेरे प्यारे महानन्द जी का यह प्रश्न किया करते हैं कि हमारी यह जो आकाशवाणी है, यह मृत-मण्डल में जाती है, पृथ्वी-मण्डल पर जाती है, ऐसा महानन्द जी ने कहा है। परन्तु उनके प्रश्न का उत्तर आज के वेद के पठन-पाठन में आ रहा था। बहुत पुरातन काल में इन्होंने प्रश्न किया। वेद का ऋषि कह रहा है-हे मुनिवरों! जिसका अन्तःकरण पवित्र होता है, इस प्रकृति का आवेश इस प्रकृति के जो मल-विक्षेप-आवरण हैं, यह उसको अधिक प्रभावित नहीं करते, तो उनका आत्मा, मुनिवरों! मृत-लोक के शरीरों से आत्मा का उत्थान हो करके वह द्यौ-लोक में, देवताओं की आत्मा में रमण करता है।

प्रकृति के मण्डल और मोक्ष-प्राप्ति

मेरे प्यारे ऋषिवर! क्योंकि प्रकृति के भी तीन प्रकार के मण्डल हैं। एक स्थूल है, यह जो जगत् है लोक-लोकान्तरों वाला यह, बेटा! स्थूल जगत् है और इसी प्रकृति का एक सूक्ष्म मण्डल है। वह जो सूक्ष्म मण्डल है, वह भी प्रकृति का एक जगत् है और एक कारण क्षेत्र है। कारण भी प्रकृति का ही एक जगत् है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! मोक्ष उसी का होता है, जो कारण से भी आत्मा उत्थान को प्राप्त होता है, प्रभु के आंगन में रमण करता है।

योगी का आहार

पुरातन काल में जब जिज्ञासु गुरु के द्वारा आत्मवेत्ता बनने के लिए जाता उस समय छह छः माह तक उन्हें वृक्षों का पंचांग दिया जाता था। आज प्रत्येक मानव योग की कल्पना करता है। ऐसा मुझे महानन्द जी ने प्रकट कराया। परन्तु योग की कल्पना साधारण प्राणी नहीं कर सकता। जब आत्मा के क्षेत्र में जाना विचारोगे उस समय तुम्हें यह प्रतीत होगा कि राष्ट्र में और योगी के लिए ऐसे-ऐसे विचार और ऐसी-ऐसी गति योगी की होती है कि साधारण मानव तो बुद्धि में विचार विनिमय भी नहीं कर पाता। मेरे प्यारे ऋषिवर! मुझे स्मरण है, जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा थे तो उस समय, बेटा! वे केवल दो वृक्षों का पंचांग देते थे, अन्न का अंकुर भी नहीं देते थे। मुनिवरों! वट वृक्ष का पंचांग का पान कराते। उससे, बेटा! क्या होता? कि मानव की तमोगुण की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती थी। जैसे अग्नि में अन्न को तपा देते हैं तो उसके अंकुर समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार, मुनिवरों! योगीजन, जब यौगिक-व्यवहार इस प्रकार का करना चाहते हैं तो मुनिवरों! वह उन वस्तुओं का पान करें जिससे आत्मा का उत्थान हो। राजोगुण, तमोगुण का विनाश हो जाए। मल-विक्षेप-आवरण रहे ही नहीं। जब मल-विक्षेप-आवरण नहीं रहेंगे तो मानव की अन्तरात्मा का उत्थान होता रहेगा।

प्राणों की गतियाँ

प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान्, देवदत्त, धनंजय, कूर्म और कृकल, ये इस मानव-शरीर में दस प्राण कहलाए जाते हैं। इन दसों प्राणों को एकाग्र, एकत्रित करते हुए इन प्राणों की गति कण्ठ के ऊपर ले, हृदय के ऊपरले भाग में आ जाती है। ब्रह्मरन्ध्र से और कण्ठ के मध्य, नाभि और कण्ठ के मध्य तक प्राण की अव्याहत गति रहती है। और, वह जो प्राण की अव्याहत गति है उसका सम्बन्ध सूक्ष्म-मण्डल से होता है। वह योगी उन महान् आत्माओं से जो उसके निकट हैं, उनसे वार्त्ता प्रकट करता है। उनसे सत्संग भी कर लेता है। उनसे विचार विनिमय भी करता है। वह योग की एक स्वाति गति कहलाई जाती है।

मुनिवरों! देखो, योग में भिन्न-भिन्न प्रकार की गति मानी गई है। आज हमें उस योग की उन सिद्धियां में नहीं जाना चाहिए, जो प्रकृति में हमें तन्मय करा देती हैं, प्रकृति के क्षेत्र में महिमावादी बना देती हैं, महिमा करा देती हैं। सिद्धियों के क्षेत्र में जो योगी चला जाता है, उसका विनाश हो जाता है। उसकी आत्मा का हनन हो जाता है। बेटा! प्रायः वह इस संसार में प्रसिद्ध हो सकता है। परन्तु अपनी आत्मा के क्षेत्र में वह प्रसिद्ध नहीं होता। न योगियों के क्षेत्र में प्रसिद्ध होता है। तो विचार-विनिमय यह कि मैं इस विषय को सूक्ष्म बनाने नहीं जाऊंगा।

योग-मुद्रा में आकाशवाणी का रहस्य

विचार क्या? मेरे प्यारे महानन्द जी ने जो प्रश्न किया था बहुत पुरातन काल में, यह जो हमारी आकाशवाणी है, यह मृत-मण्डल में जाती है, तो वह कैसे? जब आत्मा का उत्थान होता है, यह क्यों होता है? क्योंकि हमारे बहुत से जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार, यौगिक संस्कार हमारे अन्तःकरण में विराजमान हैं। क्योंकि अन्तःकरण में संस्कार रहते हैं और अन्तःकरण में एक जन्म का संस्कार नहीं, करोड़ो-करोड़ो जन्मों के संस्कार रहते हैं। मुनिवरों! वे जो संस्कार हैं वे ही मानव के जन्म का कारण बनते हैं। यदि कोई भी संस्कार किसी आत्मा के साथ नहीं होगा तो संसार में मानव का आना असम्भव है। वह नहीं आएगा। इसी प्रकार हमारे बहुत से जन्मों के संस्कार इस अन्तःकरण में विराजमान हैं, चित्त में गति प्रारम्भ हो जाती है। जैसे परमात्मा के सन्निधान मात्र से यह प्रकृति नृत्य करने लगती है है, उसी प्रकार आत्मा के सन्निधान मात्र से चित्त अपनी गति प्रारम्भ कर देता है। तो वे चित्त में नाना प्रकार के संस्कार हैं उनका उद्बुद्ध हो जाना असम्भव नहीं। परन्तु रहा यह कि साधारण प्राणी अथवा प्रत्येक प्राणी में से जिस पर अनुपम कृपा होती है, अथवा उसको प्रायः संसार के लोग संसार से दूर कह सकते हैं। परन्तु उसका जो अन्तरात्मा है अथवा जो यौगिक क्षेत्र के लोग हैं, वे उसको संसार दे दूर नहीं उच्चारण नहीं कर सकते।

शब्द-विज्ञान

मैनें बहुत पुरातन काल में इसका प्रयत्न किया। परन्तु आज तो वेद का पाठ आ गया। हमारे यहाँ वेदों के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार-विनिमय रहते हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में यह वाक्य कहा। वही आज के वेदपाठ में भी आ रहा था। हमारे यहाँ एक समय, महर्षि भारद्वाज, महर्षि दालभ्य और शिलभ जी, एक समय तीनों ऋषियों ने विराजमान हो करके यह विचाराकि हम दृष्टिपात करें कि यह जो अन्तरिक्ष है, यह वाणी का क्षेत्र है। यह जो वाणी है, ये जो शब्द हैं, यह मानव से उत्पन्न हो करके इसका जो क्षेत्र है, वह अन्तरिक्ष माना गया है। हम यह जानें कि इस अन्तरिक्ष में कैसे शब्द है? मुनिवरों! विचारना यह है कि कुछ तो ऐसे शब्द होते हैं जिन शब्दों की प्रतीती को वायु छिन्न-भिन्न कर देती है, स्वाभाविक प्रकृति के क्षेत्र में नष्ट हो जाते हैं। परन्तु शब्द का जो मौलिक गुण है, जैसे शब्द उच्चारण किया गया और एक संस्कृत का शब्द है स्वाकृति , इसी प्रकार वेदवाणी का यस्य अस्मत् है इसी प्रकार एक देवनागरी का शब्द यस्वास्वाकृति, जैसे हमारे यहाँ देवनागरी का शब्द है, यस्वा स्वाकृति का स्वाकृति, (जिसका) अभिप्रायः देवनागरी में आओ, विराजो तो ये जो शब्द हैं, इन शब्दों की जो प्रतिभा है, इसकी जो प्रतिष्ठा है, वह अन्तरिक्ष में मानी गई है। हमारे ऋषि-मुनियों ने यह परम्परा से स्वीकार किया हैं। इनकी प्रतिष्ठा अन्तरिक्ष में रहती है। ये अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित हो जाते है।

महर्षि दालभ्य और प्रवाहण, शिलभ जी ने और महर्षि भारद्वाज इन चारों ऋषियों ने विराजमान हो करके एक यन्त्र का निर्माण किया था। उस यन्त्र को शब्दकेति भामकेतु यन्त्र कहा जाता था, जो वेदों में आता है। परन्तु उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि यन्त्र में इस प्रकार पंचमहाभूतों से उन कणों को एकत्रित किया, कणों का समन्वय करते हुए उन शब्दों में यह विशेषता थी कि उनका चित्र आता था। अब से लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व या पाँच सौ वर्ष पूर्व मानव का शब्द किस प्रकार का था अथवा कैसे उनके विचार विनिमय होते थे? बेटा! विचार यह कि महर्षि भारद्वाज मुनि ने अपने १०० वर्ष पूर्व उनके पुरखा अथवा वंश समाप्त हो गए थे, और वह दार्शनिक समाज में विचार विनिमय करते थे तो उनके चित्र अथवा और भी नाना ऋषि-मुनियों के शब्द उस यन्त्र में प्रकाशित हो जाते थे, और वह जो यन्त्र था उसमें ऋषि-मुनियों के चित्र भी आते थे। यह तो प्रायः हमारा वैदिक सिद्धांत स्वीकार करता है। जैसा कि आज के वेदपाठ में आ रहा था।

प्रवचनों में हिन्दी भाषा होने का रहस्य

आज का वेद का ऋषि कह रहा है कि प्रत्येक शब्द के साथ, मुनिवरों! मानव का चित्र जाता है। क्योंकि सूक्ष्म मण्डल में इस अन्तरिक्ष में शब्द का कोई तो आकार स्वीकार करते हैं, जभी तो वह अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित होता है। तो विचार-विनिमय यह कि उस समय हमारे यहाँ प्रत्येक भाषा अंकुर रूपों में अन्तरिक्ष में प्रायः रहती है। अब मुनिवरों! देखो, जो विशेष आत्मा इस संसार में आने वाला होता है, वह उस भाषा को प्रायः अपना लेता है। (वह भाषा) अन्तरिक्ष से आनी प्रारम्भ हो जाती है, जिस भाषा का लोक में प्रचलन होता है और जो वैदिक विद्या से सम्बन्धित हो। यह भी नहीं, चाहे वह अप्रति ही नहीं, संस्कृत से सम्बन्धित हो, प्रायः उस भाषा को अपनाने के लिए वह तत्पर हो जाता हैं। प्रत्येक शब्द, प्रत्येक काल में रहते हैं। मैंने पुरातन काल में यह कहा था कि सृष्टि का प्रारम्भ, बेटा! आज नहीं हुआ है, आज ही कलियुग नहीं है, आज ही द्वापर नहीं है, त्रेता भी नहीं, सतोयुग भी नहीं, परम्परा से इनका परिवर्तन होता रहता है। (शेष उपसंहारवाची प्रवचन अप्राप्त है) लूथरा अकादमी, जम्मू १४ अक्तूबर, १९७२

२ पंच महायज्ञो के अनुष्ठान २४-०५-१९७६

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। जो ज्ञान और विज्ञान में रमण करने वाला है वह महान् मेरा चैतन्य देव प्रभु कहा जाता है। उसका ज्ञान और विज्ञान इतना नितान्त माना गया है कि वह मानवीय हृदयों में समाहित होता हुआ इस सृष्टि चक्र को क्रियाशील बना रहा है। जब हम यह विचार विनिमय करते हैं कि परमपिता परमात्मा कैसा भव्य है, जो वह ऋषि मुनियों के हृदय में अथवा मानवीय हृदयों में सदैव ओत-प्रोत रहने वाला है।

आज का हमारा वेद का ऋषि कह रहा था कि यज्ञं गच्छत प्रभे यज्ञोवस्य देवाः वृतं लोकाः वेद का ऋषि यह कह रहा था, मेरे प्यारे महानन्द जी की भी इतनी प्रेरणा रहती है। मानो इतनी प्रेरणा बाध्य करती रहती है कि हम यज्ञों के सम्बन्ध में अपना कुछ विचार विनिमय करें। हमने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा कि जितने भी प्राणी यहाँ आते हैं, यह मानव ही नहीं जितना भी प्राणीमात्र है वह सर्वत्र एक याज्ञिक बना हुआ है, वह यज्ञ करने के लिए आया है। याग का अभिप्राय यह है। मानव के लिए ऋषि मुनियों ने पांच प्रकार के यज्ञों का चयन किया। जैसे प्रथम ब्रह्म यज्ञ कहा जाता है। द्वितीय यज्ञ का नाम देव यज्ञ है, तृतीय का नाम अतिथि यज्ञ है और चतुर्थ का नाम बलिवैश्वयज्ञ और पंचम का नाम भूत यज्ञ माना गया है, जिसको हम पितर यज्ञ भी कहते हैं। ये पांच प्रकार के यज्ञ हमारे यहाँ परम्परा से ही वैदिक साहित्य में निहित हैं।

जब हम यह विचार विनिमय करते हैं कि पांचों प्रकार के जो यज्ञ हैं उनमें सबसे प्रथम ब्रह्म यज्ञ आता रहा है। ब्रह्म का अभिप्राय यह है कि ब्रह्म का चिन्तन करना। प्रातःकाल में ब्रह्म की आभा को जानना और प्रातःकाल की अमृत बेला में ब्रह्म यज्ञ करना। ब्रह्म यज्ञ कहते हैं, जो ब्रह्मा को यज्ञमान बना करके स्वयं होता अथवा यज्ञमान बन करके अपना यज्ञ करता है, विचार विनिमय करता है, अनुसन्धान करता है, उसका नाम ब्रह्म यज्ञ कहलाया गया है।

जैसा हमने तुम्हें बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा कि सृष्टि का सर्जन करने के पश्चात् परमपिता परमात्मा उसका नियन्ता बना हुआ है, अथवा उसको क्रिया दे रहा है, उसको क्रियाशील बना रहा है। तो वह जो चैतन्य देव है, वह जो मेरा प्रभु है वह सृष्टि चक्र को चला रहा है, उनको गति दे रहा है। इसी प्रकार मानव के जीवन में भी उसकी प्रतिभा निहित रहती है जैसे सृष्टि का जब प्रारम्भ होता है, तो उस समय परमपिता परमात्मा स्वयं ब्रह्मा बनते हैं। यह आत्मा यज्ञमान बनता है। ये जो पंच महाभूत हैं, ये होता बनते हैं। यज्ञों की रचना हो जाती है। उस समय परमपिता परमात्मा सृष्टि रूपी याग का ब्रह्मा बना हुआ है, उद्गान गा रहा है, उद्गान हो रहा है। साथ गान हो रहा है, ऋत गान हो रहा है, वायु और अग्नि दोनों का मिलान हो करके गान गाया जा रहा है। वह देव कितना सुन्दर उद्गम उद्गार से यह सृष्टि याग प्रारम्भ हुआ। उसी नियन्ता के नियंत्रण में कार्य हो रहा है। आत्मा इस यज्ञशाला में कर्म करने वाला। उस याग को जानने के लिए बेटा! आत्मा रूपी यज्ञशाला में विराजमान है। आत्मा रूपी यज्ञमान कैसा सुन्दर आत्मा है, वह इस संसार को जानता रहता है, वह संसार में अनुसन्धान करता रहता है, लोक लोकान्तरों को जानता रहता है, विज्ञान में जाता है, तो कहीं आध्यात्मिक वाद में परिणत होता है।

कहीं भौतिकवाद में रूपावेश हो जाता है। तो यह नाना प्रकार की ऋतु वाला यह आत्मवत् अपना कार्य करता रहता है। क्योंकि वह यज्ञशाला में विराजमान है। यज्ञशाला में जो क्रिया होती है उसी क्रिया के अनुसार कहीं यह विचार करने वाला बन जाता है। कहीं भूत यज्ञ करने वाला लगता है, कहीं अतिथि यज्ञ होने लगते हैं,

तो कहीं देव पूजा होने लगती है। वह ब्रह्म याज्ञिक क्या विचारता है कि मुझे ब्रह्म का चिन्तन करना है। वह कहीं समाधिस्थ हो जाता है। कहीं जनता में जनार्दन को स्वीकार करके कण-कण में प्रभु का दिग्दर्शन करता है। ऐसा जो महापुरुष होता है जो अत्यवत् होता है। वह इस ब्रह्म यज्ञ को जानता है। सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म यज्ञ माना है। क्योंकि ब्रह्म कहते हैं, परमात्मा को और यज्ञ कहते हैं उस संसार की रचना को और रचना हो करके यह संसार चल रहा है। एक लोक दूसरे में निहित हो करके गति कर रहा है। एक अग्नि और वायु मिल करके दोनों गति कर रहे हैं। अन्तरिक्ष और ऋत गति कर रहे हैं। यह ब्रह्माण्ड ऋत और सत् में दृष्टिपात आ रहा है।

विचार विनिमय क्या कि सबसे प्रथम यज्ञ हैं। पति पत्नी एक स्थान में विराजमान हो करके प्रातःकाल ब्रह्म यज्ञ करते हैं। ऋषि मुनि विराजमान हो करके ब्रह्म यज्ञ करते हैं। ब्रह्म का अभिप्राय कि ब्रह्म का चिन्तन। ब्रह्म की आभा को, ब्रह्म की सृष्टि को जानना। ब्रह्म की आभा को अपने में निहित करने का नाम ब्रह्म यज्ञ है।

द्वितीय यज्ञ का नाम देव-पूजा कहा जाता है। जिसे देव यज्ञ कहते हैं। हमारे यहाँ दो प्रकार के देवता कहलाते हैं, एक देवता जड़ हैं और दूसरे चैतन्य होते हैं। जड़ देवता ये पंचमहाभूत हैं। पंच महाभूतों में उसकी रचना है। जैसे सूर्य, चन्द्र और नाना नक्षत्र, ये हमारे देवता हैं, ये देते रहते हैं। चन्द्रमा सोम अमृत प्रदान करता है। सूर्य हमें तेज देता है जीवन देता है, ओज देता है, तेज की स्थापना कर देता है। पृथ्वी हमें सुगन्धि देती है, जल हमें अमृत देता है और रस देता है। तेज हमें वायु को प्रदान करती है। वायु हमें प्राण देता है और अन्तरिक्ष हमें शब्द देता है। यह कितना सुन्दर यज्ञ हो रहा है उस मेरे देव का स्वतः ही हो रहा है। जो मानव वाक्य उच्चारण करता है, वायु के भिन्न-भिन्न भेदन माने हैं। आयुर्वेदाचार्यों ने वायु को सहस्रों धाराएं मानी हैं। विज्ञान ने लाखों अरबों धाराएं स्वीकार की हैं। आज मैं विज्ञान के युग में जाकर उन धाराओं का वर्णन करने नहीं आया हूँ।

विचार केवल यह देने के लिए आए हैं कि वह देव पूजा है। देव पूजा का अभिप्राय क्या है कि हम देव पूजा करें, पूजा का अर्थ है उनका सदुपयोग करना, उनको क्रिया में लाना। तो प्रातःकाल में यज्ञ करता है। देखो, राजा जनक जैसा प्रातःकाल में यज्ञ करता है, द्वापर काल में युधिष्ठिर जैसा प्रातःकाल में देव यज्ञ करता रहा है। भगवान् कृष्ण जब प्रातःकाल में यज्ञ होता रहता तो यज्ञ करते रहते थे। पत्नी और वे दोनों यज्ञ करते रहते थे। आज मैं यज्ञों के सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं दूंगा। यह यज्ञ है इनको करना हमारा कर्त्तव्य है यज्ञ में जाना हमारा देवतव पूजन है यह देव पूजा कहलाती है। द्वितीय प्रकार का यज्ञ है। हमें अग्नि को सुगन्धित देना है, हम जितना लेते हैं दुर्गन्धि के बदले सुगन्धि प्रदान करें। हम वाणी मधुर बन करके वाणी का सुन्दर रस प्रदान करें और अग्नि को हम तेज देते चले जाएं, तेजस्वी बनें। जिसमें वायु की प्रतिक्रिया को जानते रहें और शब्द हमारा मधुर हो जिससे हमारा अन्तरिक्ष ऊँचा बने। ये पांच प्रकार की आभाएं कहलाई जाती हैं। जब यज्ञमान यज्ञशाला में विराजमान होता है, तो पुरोहित यही कहता है कि हे यज्ञमान! यह पंच महाभूत अग्नि ब्रह्म लोकः। ब्रह्म लोक में ले जाती है, यह पंच महाभूतों को जानने वाला पुरुष ब्रह्मलोक में चला जाता है। ऐसा वेद का ऋषि कहता है कि पांचों प्रकार के पंच महाभूतों को जानने वाला प्राणी ब्रह्म लोक में चला जाता है। अब जब वेद का मन्त्र, वेद का ऋषि ऐसा कहता है तो उसमें एक आश्चर्य आता है कि ऐसा वेद का ऋषि क्यों कह रहा है? आगे जब एक वेद का मन्त्र आया पंचम् भूतग प्रभे वृताः मन वृत्ति विस्तितों सूत्राः मा वा क्रित्यो मत प्रभि वृताः, अब जब यह वेद का मन्त्र स्मरण आया तो इसमें और कुछ दृष्टिपात आने लगा। जब इस वेदमन्त्र का विभाजन किया, विभक्त करके इसका सन्धिपात किया गया, तो इसमें क्या-क्या निकला? इसमें यही आया कि पंच महाभूत पांचों मनके हैं और वह मनके एक ऋतु में पिरोएं हुए हैं और वह जो ऋतु और सत् है वह ओ३म् रूपी धागे में पिरोएं हुए हैं। जब ओ३म् रूपी धागे को जाना जाता है, उस सूत्र को जानने वालों को ब्रह्म ही ब्रह्म सदैव दृष्टिपात आता है और वही ब्रह्म कहलाया जाता है।

तो बेटा! यह हमारे यहाँ पंच महाभूतों की प्रतिक्रियाएं हमारे यहाँ देव यज्ञ कहलाया है, और देव पूजा इन पंच महाभूतों को जानता है। ये जड़ देवता हैं। परन्तु एक देवता हमारे यहाँ चैतन्य देवता हैं, ब्राह्मण देखो, वेद का पठन-पाठन करने वाला उसको हम पुरोहित भी कहते हैं, उसको पराविद्या को जानने वाला भी कहते हैं, ब्रह्म के निकट चला गया है। हमारा यज्ञमान कहता है यज्ञशाला में हे पुरोहितो! आओ मेरे यज्ञ को पूर्ण करा करके मुझे परा विद्या में ले जाओ, मैं इस संसार से उपराम होना चाहता हूँ। जब इस प्रकार की आभाएं स्मरण आती रहती हैं तो वह ज्ञान और विज्ञान मानव को ऊर्ध्व पर ले जाता है। उसके पश्चात् यहपुरोहितम् ब्रह्मे। यह चैतन्य पुरोहित कहलाते हैं, यह प्रतम्! ब्रह्मो देखो, पुरोहितों के द्वारा यज्ञ होता रहता है। यज्ञ का अभिप्रायः है कि मानव को अच्छाइयों में परिणत होना। सुन्दर धाराओं को, धर्म के मर्म को जानना। देव पूजा करना। उनको सुगन्धित करना यह यज्ञ कहलाया गया है। जहाँ यह यज्ञ है उसको देव यज्ञ कहते हैं। जहाँ दोनों चैतन्य और जड़ देवताओं की पूजा होती है। पूजा का अर्थ है उनको सदुपयोग में लाने का नाम पूजा कहलाई जाती है।

आगे चल करके वेद का ऋषि कहता है कि तृतीय जो यज्ञ है वह अतिथि यज्ञ है। अतिथि कौन होता है? अतिथि प्रभावृता। जो किसी की तिथि निश्चित न हो और वह श्रीमान गृह आ जाएं तो उसको अतिथि कहते हैं। उसका नाना प्रकार के पदार्थों को पान कराना, उदर की पूर्ति कराना उसको अतिथि कहते हैं। यज्ञमान कहता है कि अतिथि आ, तू मेरे गृह के साकल्य को पान कर, तू अपने पुण्य को मुझे दीजिए। देखो, पुण्यवान के गृहों में ही बुद्धिमान् अतिथि आते रहते हैं। कौन है? जो बुद्धिमान तपस्वी होता है। वह जो गृह में आता है अतिथि बन करके वह अपने पुण्यों को त्याग देता है। जब वह गृह में त्याग देता है, तो वह पुण्याद पुण्याद देवस्तः। वेद का ऋषि कहता है कि वे पुण्यवात् पुरुष होते हैं, जिन गृहों में महापुरुष आते रहें और महापुरुषों की तरंगें होती रहें। वह अपने शब्दों के चित्रों को गृह में त्याग देता है। बेटा! मैं विज्ञान में जाना नहीं चाहता हूँ। क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द जी को भी दो शब्द उच्चारण करने हैं। विचार क्या कि मैं इस विचार को बहुत ऊर्ध्व गति में ले जाऊ। इतनी ऊँची उड़ान नहीं उड़ना चाहता हूँ। क्योंकि अतिथि का अभिप्राय यह है कि वह अपने पुण्य को त्याग देता है, और वह यज्ञमान के हृदय की आभा को अपने समीप ले जाता है और हृदय में प्रसन्नता को मुक्त कर देता है मानो वह अतिथि यज्ञ कहलाया गया है।

अब बलिवैश्व-यज्ञ, बलिवैश्व है जो प्राणी के लिए अपने जीवन में सुगन्धि देते हैं। प्राणों को भी न्यौछावर कर देते हैं। उन पक्षियों के लिए जो वाणी से वाक् उच्चारण नहीं कर सकते। वाक् उच्चारण तो कर लेते हैं। परन्तु वह विद्या परिश्रम से तो जान पाता है। आज उन प्राणियों को देना हमारा बलिवैश्व यज्ञ है। अग्नि को देना, अग्नि उन्हें प्रदान कर देती है। अग्नि उसका हव्य बन करके उनको प्राप्त करा देती है उसको बलिवैश्व-यज्ञ कहते हैं।

एक भूत यज्ञ कहलाया जाता है। जिसमें पुरोहित जन होते हैं और जितने पुरुष होते हैं उनमें माता और पिता भी आते हैं, उनका पूजन करना अर्थात उनका यथोचित् उनकी इच्छाओं की पूर्ति करने का नाम उनकी पूजा कहलाई जाती है। आज जब उनकी सेवा की जाती है, उनका युक्त आदर किया जाता है, आचार्यों का भी और माता-पिताओं का भी वह हमारे यहाँ पितर-यज्ञ कहलाते हैं। पितर कौन होते हैं? पितर की बहुत विशाल व्याख्या है, माता-पिताओं का नाम भी पितर है, राजा को भी पितर कहते हैं, पितर नाम आचार्यों का भी है, पितर नाम परमात्मा का भी है, पितर नाम अग्नि का भी है, पितर वायु को भी कहा गया है, पितर नाम अन्तरिक्ष को भी कहते हैं, पितर नाम यज्ञ को भी कहा गया है और पितर नाम हमारे यहाँ राजाओं का भी जो अधिराज होता है उसको भी पितर कहते हैं। पितर का अभिप्राय है कि जिससे हमारी रक्षा होती हो उसी का नाम पितर कहलाया गया है। मैं पितरों की व्याख्या देने तो नहीं आया। समय मिलेगा मैं इसकी व्याख्या प्रकट करूंगा।

आज का विचार कि हम पंच महा यज्ञों के करने वाले बनें। ये पंच महा यज्ञ के करने वाले यज्ञमान अपने

गृह को सुन्दर बनाता है। अपने गृह को पितर-यज्ञा बनाता है, देव यज्ञी बनाता है, विचित्र यज्ञी बना करके इस संसार सागर से पार-पार होता है। अब मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः- ओ३म् यज्ञाः वृतम् माम हृदया वस्यम् प्राति गतम् पूषरुयाः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी कुछ यज्ञों के सम्बन्ध में अपनी विवेचना प्रकट कर रहे थे। मैं अपने वाक्य कुछ प्रकट करूं तो मानो सूर्य के समीप एक जुगनू का कार्य कर सकूंगा। विचार क्या है? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी पंच महा यज्ञों के सम्बन्ध में अपनी विवेचना प्रकट कर रहे थे। अपना व्यापक रूप प्रकट कर रहे थे कि यहाँ कितने प्रकार के होते हैं। परन्तु जब मुझे यह काल अथवा यह समाज स्मरण आने लगता है, तो मेरा अन्तरात्मा ऐसा विचित्र सा बन जाता है कि संसार को मैं किस रूपों में दृष्टिपात करूं? मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह वाक्य प्रकट कराना चाहता हूँ कि जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है वहाँ सामाः गानाः यज्ञः रूपाः देवताः, वहाँ एक सुन्दर यज्ञ रूपों में मानों अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा यज्ञ को दृष्टिपात करता हूँ। जब मैं इस कर्मकाण्ड की यज्ञ वेदी पर प्रवेश करता हूँ, अथवा कर्मकाण्ड के क्षेत्र में प्रवेश करता हूँ तो ऐसा दृष्टिपात होता है कि न होने से कुछ होना सुन्दर माना जाता है। कर्मकाण्डों वृत देवाः हिरण्यम् ब्रह्म लोकाः। परन्तु जो कर्मकाण्ड की पद्धति है, वह विचित्र है। वह मानो प्रभावशाली है। रहा यह वाक्य कि आज मैं यज्ञमान को अपने हृदय से एक वाक्य प्रकट करना चाहता हूँ। हे यज्ञमान! तेरा हृदय सदैव ऊँचा बनता रहे। तेरे गृह में तेरी मानवता में सदैव मानवता का प्रसार होना चाहिए। देवता और यज्ञ हमें यही शिक्षा देते हैं कि मानव बनो, जैसे वृक्ष पर फल आने पर वह स्वयं अपने में नमः (झुक) जाते हैं इसी प्रकार धर्म और यज्ञ यह यज्ञमान का फल होता है। इस कार्य को करने के पश्चात् स्वयं ही मानव नम्र हो जाता है। इसलिए नमः की आवश्यकता संसार में सदैव रहती है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इससे पूर्व शब्दों में यह कहा था कि प्रत्येक वाणी को नमः में परिणत रहना चाहिए। नमः होना चाहिए। आज मैं हे ब्राह्मण! तेरा उद्गार सदैव ऊँचा बना रहे। मेरी हृदय से यह कामना रहती है कि हे ब्राह्मण! हे साम गान गाने वाले! देखो, साम गान तो किसी काल में गाया जाता था जब उदात्त और अनुदात्त स्वरों के सहित साम गान गाया जाता है तो देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं परन्तु आज वर्तमान के इस काल में पहुंच रहा हूँ। हे ब्राह्मण! तेरा कंठ तेरी मानवता सदैव ऊर्ध्व गति को प्राप्त होती रहे। तेरे गृह में सात्विकता का प्रसार होता रहे। जिससे सत् में रमण करने वाला प्राणी अपने मानवत्व को ऊँचा बनाता है।

रहा यह वाक्य कि मानव के जीवन में नाना आपत्तियां आती रहती हैं, जीवन में अन्धकार और प्रकाश दोनों का आ जाना स्वाभाविक कहलाया जाता है, उस स्वभाव को अपनी शोभाओं में रमण कर देना चाहिए।

आज का मानव कहता है कि यज्ञ तो पाखण्ड है। परन्तु जब मैं यह जानना चाहता हूँ कि मानव इस राष्ट्र को दूषित करना पाखण्ड नहीं है, तो क्या परमात्मा को न मानना पाखण्ड नहीं हैं, परमात्मा को अपने को न मानना भी तो पाखण्ड कहलाया जाता है। मैं पाखण्ड की व्याख्या कहाँ तक कर पांऊगा। अग्न्याधान करने से देवताओं का यदि दूत बन गया है, और दूत बन करके वह सुगन्धित कर रहा है। देवताओं को वह ओज दे रहा है, इसको मानव पाखण्ड कहता है तो यह मानव का दुर्भाग्य नहीं तो क्या है? क्योंकि पदार्थ विद्या को न जानने वाला प्राणी उसको पाखण्ड की दृष्टि से उच्चारण करता है। क्योंकि वह पदार्थ विद्या को नहीं जानता, वह परमाणु विद्या को नहीं जानता, जो परमाणु विद्याशाली होते हैं। परन्तु उनका गम्भीर अध्ययन नहीं होता। यदि उनका गम्भीर विचार हो तो इसको कौन पाखण्ड कह सकता है। प्रत्येक मानव पाखण्ड को उच्चारण कर देता है परन्तु पाखण्ड की मिमांसा नहीं जानता। पाखण्ड उसे कहा जाता है जो अपने मानव जीवन को अन्धकार में ले जाता है, अज्ञान में ले जाता है वह महान् पाखण्ड कहलाया जाता है।

मैं कहाँ चला गया हूँ, मैं पाखरड की भी चर्चा देने नहीं आया हूँ। मैं केवल यह अपने पूज्यपाद गुरुदेव को विचार देने आया हूँ, अपना वाक्य प्रकट करने आया हूँ कि भगवन्! यह जो समाज है, यह जो काल है यह कहाँ जा रहा है? आधुनिक राष्ट्र का जो समाज है, राष्ट्रीय जो पद्धति है वह कहाँ जा रही है? मैं राष्ट्र के ऊपर तो अपने विचार देने नहीं आया हूँ, मैं तो केवल हे उद्गान गाने वाले ब्राह्मण! तू अपने उद्गार को ऊँचा बनाता चल। तेरी वाणी में सरसता होनी चाहिए। तेरी वाणी में पवित्रता होनी चाहिए जहाँ वेदों का पठन-पाठन करना बहुत जरूरी है, परन्तु वेद के पठन-पाठन के पश्चात् गम्भीर होना यह परमात्मा की कृपा हो जाएगी तो गम्भीर प्रायः दृष्टि आने लगेगी। प्रत्येक मानव को गम्भीर बनना है। प्रत्येक मानव को गम्भीर बन करके अपने मानवीय यज्ञ को ऊँचा बनाना है। जिससे यज्ञ पवित्र बन करके हम इस संसार सागर से पार हो जाएं।

पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी यज्ञों के सम्बन्ध में अपना विचार दे रहे थे। परन्तु मुझे अब आज का राष्ट्रवाद स्मरण आता है, इस राष्ट्र के चयन की चर्चाएं आती हैं, तो मेरा हृदय कभी-कभी दुःखित हो जाता है। कहीं-कहीं व्याकुल हो जाता है और यह कहता है कि अब मैं क्या करूं? मानो देखो, वे परमपिता परमात्मा की महत्ता, उसकी प्रतिभा को अपनाना ही हमारा कर्त्तव्य कहलाया जाता है, उस महत्ता को अपनाना हमारी मानवता कहलाई जाती है। हे यज्ञमान! तू सपत्नीक अपने जीवन को ऊँचा बना। मेरी तो सदैव यह कामना रहती है कि तेरा जीवन ऊँचा बना। मेरी तो सदैव यह कामना रहती है कि तेरा जीवन ऊँचा बने और गृह में सदैव प्रसन्न रहने वाले प्राणी हों। बालक बालिकाएं दर्शनों में पारायण होने चाहिए। ऐसी मेरी कामना रहती है। हे होताजनों! तुम यज्ञमान को ऊँचा बनाओ। तुम यज्ञमान के लिए यज्ञ करो। मानो यज्ञं ब्रह्म गच्छो योनि वृताः यज्ञः। वेद के ऋषि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में वर्णन करते हुए कहा था कि यथम् बृहे योनिमता वृतेः। मानो यह संसार परमात्मा रूप, यह प्रकृति रूप जो वृत्तियां हैं, ये योनि रूप में संसार को जन्म दे रही हैं। इसी प्रकार मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में वर्णन करते हुए कहा था कि यह संसार विचित्र बना रहता है। ब्राह्मण! तू उद्गान गाने वाला बन। हे ब्राह्मण! जब समाज में, राष्ट्र में ब्राह्मण होता है, विवेकी ब्राह्मण होता है, उस काल में यह समाज अबरेत (उन्नत) बन जाता है।

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कहा था, उन्होंने कई काल में भारद्वाज की चर्चा प्रकट की। आज मैं यह उच्चारण कर सकता हूँ कि कुछ काल के पश्चात् यह विज्ञान पराकाष्ठापर पहुंचेगा और विज्ञान का दुरूपयोग होना यह भी पराकाष्ठा पर पहुंचेगा और उसके पश्चात् रक्त भरी क्रान्तियां उत्पन्न हो जाएगी समाज में। परिणाम क्या कि भारद्वाज मुनि ने पूज्यपाद गुरुदेव के शब्दों में यही कहा था। पूज्यपाद गुरुदेव को मैं विज्ञान की चर्चा करता रहता हूँ। आज के मानवीय क्षेत्र में जो विज्ञान है, वे अन्तरिक्ष के गृहों में रमण कर रहे हैं, कहीं चन्द्रमा की परिक्रमा हो रही है कहीं मंगल में जाने वाले यन्त्रों का मानो देखो, मंगल में जा करके अपनी आभा में जाने वाले हैं, कई प्रकार के रूढ़िवादी प्राणी हैं, जो आज के विज्ञान को यह कहते हैं कि मंगल में कोई नहीं जा सकता। कुछ रूढ़िवादी ऐसे हैं, कि चन्द्रमा में कोई नहीं जा सकता। कुछ ऐसे रूढ़िवादी हैं कि मंगल में कोई नहीं जा सकता। कुछ ऐसे रूढ़िवादी हैं कि जो विज्ञान के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। वे क्यों नहीं करते? उसका मूल कारण है रूढ़ि। वह धर्म की रूढ़ि है, वह धर्म की रूढ़ि नहीं, वह राष्ट्र के विनाश की रूढ़ि कहलाती है। वह धर्म की रूढ़ि नहीं हैं। जैसे मुहम्मद के मनाने वाले हैं, ईसा के मानने वाले हैं और भी नाना जो विज्ञान के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते वे ऐसे रूढ़िवादी हैं कि राष्ट्र का विभक्त करने वाले ही रूढ़ि बने हुए हैं। क्योंकि राजा समाज में सुमति न होने के कारण विचारों का परिवर्तन नहीं कर सकता समाज में। क्योंकि यदि राजा पवित्र हो और महाभारत काल को दृष्टिपात करें, त्रेता के काल को दृष्टिपात करें, उससे पूर्व काल को दृष्टिपात करें तो एक ही धर्म के मर्म को जानने वाले प्राणी हों, रूढ़िवाद को त्यागने वाला समाज हो। विज्ञान उसमें निहित हो तो देखो, वह जो राष्ट्र

और समाज है, वह ऊँचा बनेगा और जब यहाँ दो प्रकार के प्राणी होते हैं, एक तो विज्ञान के अस्तित्व को नहीं मान रहा है और मृत्यु के अस्तित्व को नहीं मान रहा है एक कहता है न मृत्यु है। यह जो समाज है क्या है? यह विज्ञान से, अपनी बुद्धि से स्वतंत्र हो करके जब नहीं विचारता परमात्मा के राष्ट्र को और धर्म के मर्म को तो वह रूढ़ि बन करके राष्ट्र के लिए विभक्त बनाने वाला एक समूह बन जाता है और समूह बन करके राजा को नाना प्रकार की क्रान्तियों में परिणत करके वह समाज राष्ट्र के बटवारे में प्रसन्न युक्त हो जाता है। हे राजा! यदि तू समाज को ऊँचा बनाना चाहता है तो रूढ़ियों को समाप्त करने का प्रयास कर। तेरे राष्ट्र में महत्ता आ जाएगी। तेरे राष्ट्र में दार्शनिकता और विवेक आ जाएगा। इसलिए आज तुझे विचारना है कि तू अपने राष्ट्र में एक महत्ता को लाने का प्रयास कर। मैं इन वाक्यों को इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ वेद में एक मन्त्र आता है कोई इस नियम को नहीं मानेगा तो मेरा क्या कर सकता है परन्तु मेरे यह उद्गार अन्तरिक्ष में गति करें।

आज का हमारा विचार क्या कि राजा को सुन्दर बनना चाहिए। राजा को पवित्र बन करके अपने राष्ट्र में धर्म और मानवता का प्रसारण करके सबसे प्रथम रूढ़िवाद को समाप्त करना चाहिए। जब समाज में रूढ़ि चली जाती हैं तो विचारों में भेदन नहीं होता और जब विचारों में भेदन नहीं होता तो रक्त भरी क्रान्तियां भी नहीं होती। विचार विनिमय हमारा यह है कि हम क्रान्ति को लाना चाहते हैं। परन्तु क्रान्ति तो स्वतः आ जाती हैं। वह क्रान्ति कैसे आती है? जब विज्ञान का दुरूपयोग होने लगता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव निर्णय कराते रहते हैं कि ब्रह्मचारी विद्यार्थियों को उस चित्रावलियों में नहीं जाना चाहिए। जिन चित्राविलयों में रमण करके मानवता समाप्त हो जाती है। विज्ञान का दुरूपयोग होता है। विज्ञान के दुरूपयोग को पान करने वाला राजा नहीं होना चाहिए। अन्यथा यह राष्ट्र, यह समाज अपवित्र बन जाता है। इसलिए राजा को चाहिए कि अपनी राष्ट्रीय पद्धति में ऐसा कोई विचार, ऐसा कोई चित्रण नहीं होना चाहिए जिससे अश्लीलता आ जाए। ब्रह्मचारियों का ब्रह्मचर्य दूषित हो जाए, ब्रह्मचारणियों का ब्रह्मचर्य दूषित हो जाए। संघर्ष हो करके क्या बनता है कि नाना प्रकार के रोग बलवान हो जाते हैं। नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं, और उन रोगों के हो जाने का परिणाम क्या होता है कि शरीरों में नाना विष आ जाते हैं, और विष के आने पर और नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं। उसका परिणाम यह है कि वह रोगों में परिणत रहते हैं।

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को इन वाक्यों को निर्णय कराने जा रहा हूँ कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन में विज्ञान को जानना चाहिए। आज का मानव विज्ञान में गति कर रहा है, आज का मानव नाना प्रकार के अणु महा परमाणुओं को एकत्रित करने में लगा हुआ है। एक ऐसा यंत्र आज का मानव बना रहा है, जैसे सूर्य की किरणें आती हैं और सूर्य की किरण प्राणवर्धक हैं, परन्तु से जो प्राणवर्धक वायु है, उन परमाणुओं को यन्त्रों में सींच लेता है और वह रेखा जो सूर्य पृथ्वी के अन्तर्गत रेखाएं हैं, सूर्य की किरणें शीतल हो करके पृथ्वी पर आती हैं। वह रेखा उन किरणों को नग्न बना देती हैं। क्योंकि प्राण तो उसमें से खींच लिए यन्त्र ने और जिस राष्ट्र को भस्म करना चाहेंगे उससे वह मन्त्र प्राणवर्धक वायु को अपने में धारण करने के कारण वह राष्ट्र का राष्ट्र, प्राणी मात्र उस राष्ट्र का भस्म हो जाएगा। आज का वैज्ञानिक इन यन्त्रों को निर्माण करने जा रहा है। भारद्वाज मुनि महाराज ने तेरह लाख वर्षों पूर्व इन यन्त्रों को जान लिया था। परन्तु आज का वैज्ञानिक विश्लेषण कर रहा है। ऐसे ऐसे मन्त्र जिससे राष्ट्र का राष्ट्र भस्म हो जाए। ऐसा यंत्र की राष्ट्र अपने आँगन में विराजमान है, और लगभग एक सहस्त्र योजन की दूरी पर वह राष्ट्र को भस्म करके वह यन्त्र विश्वस्त हो सकता है। ऐसा वैज्ञानिक बन रहा है परन्तु हे भोले! हे प्राणियो! यदि तुम विज्ञान को ऊँचा बनाते चले जा रहे हो इसका मैं कोई विरोधी नहीं हूँ परन्तु जहाँ प्राणियों के नष्ट होने के लिए प्रयास किया जाता है। अरे वहाँ प्राणियों के जीवन रक्षा का भी तो कोई प्रयास होना चाहिए। प्राणीमात्र में जीवन होना चाहिए और वह जीवन कैसे आएगा? वह विवेक से आएगा, आध्यात्मिक वाद से

आएगा।

आज का समाज, राष्ट्र विज्ञान को ऊँचा बनाता चला जा रहा है। आध्यात्मिकवाद को तिलांजलि प्रदान कर दी है। उसका परिणाम क्या होगा? उससे रक्त भरी क्रान्ति आ करके समाज अग्नि के मुख में परिणत हो जाएगा। मैं उन प्राणियों को सौभाग्यशाली स्वीकार करता हूँ, जो प्राणी याग जैसे कर्म में अपना विश्वास करते हैं। जो याग है, वे शब्द अन्तरिक्ष में जाते हैं, सुगन्धि युक्त मानो वही चित्र बन करके अन्तरिक्ष में वायु का विभाजन करते हैं। तरंगों का विभाजन करते हैं, सुगन्धि को देते हैं वही तो मानव का जीवन बन करके रहता है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में वर्णन कराते हुए कहा है परन्तु जब मैं आधुनिक काल के राष्ट्र नायकों को दृष्टिपात करता हूँ, तो वह मुझे ऐसा विचित्र सा प्रतीत हो रहा है कि जिस समाज में जिस काल में विचारक पुरुष नहीं रहते राष्ट्र में, विवेकी पुरुष नहीं रहते, अरे, उस राष्ट्र का आत्मा ही वह विचारक पुरुषों का है, यदि वही नहीं रहेंगे तो यह राष्ट्र कितने समय तक जीवित रहेगा? मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि यह राष्ट्र बहुत सूक्ष्म समय तक जीवित रहेगा और इसमें अग्नि के काण्ड हो करके अपनी आभा में नष्ट हो जाएंगे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक वाक्य प्रकट कराते रहते हैं। वह बहुत पुरातन काल का वाक्य है। महाराजा भस्मासुर की गाथा प्रकट करते हैं। महाराजा भस्मासुर महाराजा शिव के शिष्य कहलाते थे। उन्होंने जब महान् तप किया तो तप करने के पश्चात् शिव के द्वारा (समीप) एक कंगन था वह कंगन उन्हें प्रदान कर दिया और यह कहा कि जिसके मस्तिष्क के ऊपरले भाग में यह कंगन छू जाएगा और जो तुम वाणी से कहोगे वही यह कर पाएगा, उसको जीवन देना चाहते हो जीवन दे सकोगे। मृत्यु को उच्चारण करना चाहोगे तो मृत्यु आ जाएगी। महाराजा भस्मासुर ने वह कंगन स्वीकार कर लिया और एक समय वह तप करने के पश्चात् महाराजा कैलाश के द्वारा पहुंचे। महाराजा शिव के द्वारा पहुंचे और वहाँ नृत्य होने लगा तो महाराजा भस्मासुर ने यह कहा कि हे शिव मुझे तो यह सती चाहिए। वह सती पर मोहित हो गया। मोहित हो करके यह कहा यह सती चाहिए। शिव महाराज बोले अरे भस्मासुर! ऐसा क्यों? उन्होंने कहा कि यदि नहीं दोगे तो मैं इस कंगन से तुम्हें भस्म करूंगा। वह कंगन उन्हीं के प्राणों का पिपासु बन गया, शिव के प्राणों का पिपासु बन गया। महाराजा शिव ने कहा कि मुझे कुछ अवकाश दिया जाए। वह विष्णु के द्वारा पहुंचे, विष्णु ने कहा कि इसको हम नहीं जानते। इन्द्र के द्वारा पहुंचे परन्तु इन्द्र ने भी यही उत्तर दिया। ब्रह्मा के द्वारा पहुंचे उन्होंने भी यही उत्तर दिया। अन्तिम में क्या हुआ अब मैं क्या करूं? बुद्धिमान ऋषि मुनियों की सभा में पहुंचे, दार्शनिक का सम्मेलन हो रहा था, ऋषि मुनियों ने कहा कि हे शिव! तुम ऐसा करो कि महाराजा! भस्मासुर का और सती दोनों का नृत्य कराओ और नृत्य करते करते जहाँ सती का हाथ जाएगा वहीं भस्मासुर का और स्वयं जब उनका भुज, वह कंगन उनके सिर के ऊपरले भाग में जाएगा, उस समय तुम भस्म कह देना। वह स्वतः भस्म हो जाएगा। यह युक्ति ऋषियों ने प्रकट कराई। अब महाराजा शिव भस्मासुर के द्वारा आये। भस्मासुर ने कहा कि कहो शिव मुझे सती को प्रदान करो। उन्होंने कहा कि मैं प्रदान करने के लिए युक्त हूँ। परन्तु सती का नृत्य मुझे बहुत प्रिय लगता है तुम भी इसके साथ में नृत्य करो, ऐसा ही नृत्य करो जैसा सती करे। महाराजा भस्मासुर बोले बहुत प्रिय! उनका नृत्य होने लगा। पार्वती सती का जहाँ भी भुज जाता था वहीं उनका भुज पहुंचा, जब कंगन ऊर्ध्व भाग में पहुंचा, कंठ के ऊपरले भाग में महाराजा शिव ने भस्म कहा तो स्वतः उस कंगन से भस्म हो गया।

परिणाम क्या कि आज का जो विज्ञान है वह भस्मासुर की भांति है। यह समाज अपने ही विज्ञान में स्वतः नष्ट हो जाएगा वह काल आने वाला है। इसी प्रकार यह जो विज्ञान है यह बहुत ऊर्ध्व गति वाला विज्ञान है। अरे भोले प्राणियों! तुम जानते नहीं कि परमात्मा का प्रकाश कहाँ नहीं है, कौन-सा स्थान ऐसा है, जहाँ परमात्मा का प्रकाश नहीं है, अरे, रूढ़ि त्यागने का प्रयास करके विज्ञान के क्षेत्र से होते हुए तुम आध्यात्मिक मार्ग को प्राप्त करो

यदि तुम महत्ता चाहते हो। मानव याग चाहता है, मानव जीवन को चाहता है, राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता है, तो विज्ञान को जान करके आध्यात्मिकवाद में प्रवेश कर जाओ जिससे तुम्हारा मानवीय जीवन सुन्दर बन जाए।

मेरे अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कई काल में प्रकट कराते हुए कहा कि यह समाज कहाँ जा रहा है? आधुनिक काल को जो राष्ट्रवाद है वह विचारक नहीं है, यदि विचारक होता तो एक धर्म-वैदिक, वैदिक पताका होनी चाहिए, वही पताका (ओ३म् की) तुम्हारा राष्ट्रीय ध्वज होना चाहिए। उसी ध्वज के द्वारा तुम अपने राष्ट्र में एक ध्वजा को ले करके मानो तुम एकता को लाना चाहते हो तो सबसे प्रथम रूढ़ि को समाप्त करना होगा। यदि रूढ़ियां समाप्त नहीं हुईं तो एकता कदापि भी नहीं ला सकते। क्योंकि रूढ़ि क्या है? वह राष्ट्र को स्वप्रवत दृष्टिपात करती रहती है। रूढ़ि कहते हैं कि हमारा आगे जन समूह आने वाला है, हमारी राष्ट्र की पद्धतियां बनेंगीं, ऐसा विचार जिस राजा के समाज में रूढ़ियों में हो। हे राजा! यदि तू राजा बनना चाहता है, समाज को ऊँचा बनाना चाहता है, धर्म और विज्ञान को ऊँचा बनाना चाहता है, तो इन रूढ़ियों को समाप्त करता चल। इनको वास्तविक मार्ग को देता चल और वास्तविक मार्ग के और विज्ञान के द्वारा प्राप्त होगा। आज इस सम्बन्ध में मैं कोई विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ। जो मानव विज्ञान के विज्ञान को भी स्वीकार नहीं करता, ज्ञान को भी स्वीकार नहीं करता वह कहता है कि प्रभु ही जाने। अरे, प्रभु तो जानता ही है, प्रभु तो सबको जानता है परन्तु जो तुम्हारी अन्तरात्मा में विराजमान है, तुम्हारी अच्छाईयों में भी तो परमात्मा है, अच्छाइयों को लाने का प्रयास तो करो, अच्छाइयों को लाना ही तो तुम्हारा जीवन है। याग में आहुति देना वह परमात्मा का संसार रूपी याग जो सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न किया वह प्रारम्भ हो रहा है, वह चल रहा है याग उसमें अच्छाइयों की आहुति दो। और दूरितों को समाप्त करो। यही तो तुम्हारा जीवन है, इसको तो मानव जानता है। प्रभु के क्षेत्र में जाते रहो और अपने में प्रयास करते रहो। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण करना चाहता हूँ कि हे प्रभु! ऐसी प्रार्थना करो जिससे राष्ट्र नायकों की बुद्धि पवित्र बन जाएं। अशुद्ध प्रकृति न रह करके इस राष्ट्र को अशुद्ध न बनाते चले जाएं। वह निस्वार्थ हो करके राष्ट्र को अशुद्ध न बनाते चले जाएं। वह निस्वार्थ हो करके राष्ट्र को ऊँचा बनाएं, स्वार्थ में आ करके खड्ड में न जाएं ऐसी मैं प्रभु से याचना करता हूँ।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक समय जब मैं पूज्यपाद गुरुदेव की शरण में आया तो एक समय उन्होंने आश्रम से प्रस्थान किया भिक्षा के लिए। क्योंकि याग के लिए कुछ कर्म काण्ड युक्त करना था। तो वह सौमनोत नामक राजा के यहाँ पहुंचे, सौमनतुक नाम का राजा यह मनु वंश में था। उनकी पत्नी का नाम सुशीला था। राजा और वे दोनों अपने गृह में स्वयं अपना कला-कौशल भी करते थे। उनके कृषि का उद्योग था। वे कृषि में अन्न उत्पन्न करते थे। गऊ उनके द्वारा थी, गौ घृत के द्वारा और अपनी कृषि करके उस अन्न को पान करते थे। और राष्ट्र को पालन करते थे। प्रजा को कर्त्तव्य में लाने का प्रयास करते थे। उस समय मैं साधना करता था। पूज्यपाद गुरुदेव मुझे राजा के यहाँ ले गए। राजा ने स्वागत किया, चरणों को छू कर आसन को त्याग दिया, राज स्थली को त्याग दिया और उनके चरणों में ओत-प्रोत हो करके बोले कि गुरुवर! कैसे गमन हुआ? कैसे कष्ट किया? मुझे वहीं से आज्ञा दे देते। मैं आपके द्वारा आता और राष्ट्रीय वाहन में लाने का प्रयास करता। गुरुदेव ने कहा कि कोई बात नहीं राजन् हम तुम्हारे आसन पर आए हैं, तुम्हारे आसन को दृष्टिपात करने की उत्कृष्ट इच्छा थी। राजा ने कहा कि आप क्या पान करोगे? तो गुरुदेव कहते हैं कि हम तुम्हारे राष्ट्र का भोजन प्राप्त नहीं करेंगे। राजा कहता है कि प्रभु क्यों? मेरे राष्ट्र का जो अन्न है वह पाप का अन्न नहीं है। मेरे राष्ट्र का जोअन्न है वह स्वयं मेरी पत्नी और मैं (हम दोनों) कला कौशल करते हैं। कृषि में उद्गम करते हैं और उस अन्न से हम अपने उदर की पूर्ति करते हैं। तो पूज्यपाद का हृदय गद्-गद् हो गया। उन्होंने नाना पदार्थों का पान कराया। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को तो वह काल स्मरण है, परन्तु कुछ अन्न पान किया। राजा हो तो ऐसे हों। मैं प्रभु से यही कहता हूँ कि ऐसे विवेकी राजा होने

चाहिए। स्वार्थी राजा नहीं होने चाहिए कि राष्ट्र नष्ट हो जाएं या न रहे परन्तु हम राज स्थली को न त्यागें।

आज का समाज कहता है, आज का संन्यासी, आज का तपस्वी वास्तव में तो तपस्वी ही नहीं है और कोई तपस्वी राजा के द्वारा चला भी जाएं तो राजा अपनी राजस्थली को त्यागने के लिए तत्पर नहीं है। क्यों नहीं है कि साधु ही इस राष्ट्र को न अपना ले। यह प्रकृति बनी हुई है, आज के राष्ट्र की कि यह साधु ही न अपना ले राष्ट्र को और साधु की भी यह प्रवृत्ति है कि यदि उसे उस स्थली पर नियुक्त कर दिया जाएं, तो हो सकता है कि वह राज स्थान को त्यागने के लिए तत्पर न हो। इस प्रकार का समाज का जीवन जब बन जाता है, तो समाज कैसे ऊँचा बनेगा? मैं जानना चाहता हूँ कि आध्यात्मिकवाद कैसे पनपेगा? आज जब मैं साधु के द्वार पर जाता हूँ, आधुनिक काल के साधु को विचारता हूँ तो द्रव्य चाहता है, द्रव्यपति बनना चाहता है, ऊँचे ऊँचे भवनों में ऊर्ध्व में रहना चाहता है, वह हमारी भांति वायु सेवन करके अपना विचरण करना नहीं चाहता। क्योंकि वह उस विद्या को जानता नहीं, वेद का अध्ययन नहीं करता। वे तो कहते हैं कि हम तो भगवान् हैं। भगवान् की पूजा करो। मानो वे उस सर्वत्र रहने वाले भगवान् को स्वीकार नहीं कर पाते। इसीलिए यह अज्ञान आ गया है। यह क्रियात्मक जीवन न रह करके राजा उनका आदर नहीं करता। राजा उनका कुछ सूक्ष्म आदर करता है, तो उनको अभिमान आ जाता है कि राजा भी मेरी आज्ञा का पालन करता है। अरे भोले साधुओ! अरे राजा! तुम्हारा राज साधु से होता है, साधु राज से नहीं होता। क्योंकि साधु को राज्य ऊँचा बना देता है। परन्तु राजा राष्ट्र को ऊँचा कदापि नहीं बना सकता। इसीलिए मैं उच्चारण कर रहा हूँ, क्योंकि वह राजा साधु ही प्रकृति के होते हैं, जो स्वयं कला कौशल करते हैं।

आज का विचार क्या? भस्मासुर की चर्चा कर रहा था। ऐसा जो शिव है जो मानो ब्रह्मे वृताः परमात्मन् ब्रह्मे लोकाः। आज का विज्ञान कहता है कि परमात्मा नहीं क्योंकि परमात्मा के बिखरे हुए कंगन रूपी कणों को एकत्रित करके वैज्ञानिक बन रहा है, और फिर कहता है कि परमात्मा है ही नहीं। तो यह कैसा आश्चर्य दृष्टिपात करता हूँ। अरे, वह कंगन जिससे तुमने निर्माण किया है वे कण तो प्रभु! के ही बिखेरे हुए हैं। वे कण तो प्रकृति के ही हैं। उसके पश्चात् भी तुम यह कहते हो कि परमात्मा है ही नहीं अरे, परमात्मा को तो तब जाना जाता है, जब आत्मा के चक्षु स्पष्ट हो जाते हैं। प्रकाश में आ जाते हैं। अरे, जब तुम इन नेत्रों से यह दृष्टिपात करना चाहते हो तो दृष्टिपात नहीं होगा अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा भी पऊंगा। उच्चारण मैं यह कर रहा था, मैंने अपना सूक्ष्म सा अपना विचार दिया है और वह विचार ऐसा है जिन विचारों से हमें आश्चर्य हो रहा है आश्चर्यचकित हो रहा हूँ। मैं आज के यज्ञमान को अपने शुभ हृदय से यह उच्चारण करने आया हूँ कि इनका आयु दीर्घ बने, सौभाग्य अखण्ड बना रहे जिससे शुभ कार्यों में प्रवृत्ति बनी रहे हे ब्राह्मण! तेरी कंठ में जो हृदयग्राही वाणी है, वह पवित्र बनती हुई शरदः शतम् शरदः शतम्, मानो सहस्रों वर्षों की आयु नहीं और भी विशेष आयु हो। जिससे तुम यौगिकवाद को प्राप्त होते हुए अपने मानव जीवन को सुन्दर बना सको। ऐसा मेरा सदैव वाक्य रहता है अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः- हास्य..............मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने कुछ विचार प्रकट किए। इनके विचार बड़े महान् विनोदमय विचार थे, विनोद में क्या मुझे ऐसा प्रतीत होता रहता है इनके हृदय में विडम्बना रहती है। वह जो विडम्बनित हृदय है जिससे विडम्बना रहती है वह इन्हें मानो समाज को आभा से युक्त ब्रह्म लोकाः, कोई वाक्य नहीं। यह तो समाज का परिवर्तन है, होता रहता है। समाज में किसी काल में रूढ़ियां भी हैं किसी काल में महत्ता भी है यह तो परम्परा से प्रभु का चक्र है चल रहा है, चलता रहेगा। जैसा मेरे पुत्र ने कहा है उसके आधार पर ही यज्ञमान तुम्हारा सौभाग्य अखण्ड बना रहे, जीवन में ऐसे महान् कार्य और अपने में अभिमान की प्रतिभा को समाप्त करके नम्र बनते हुए जीवन को ऊँचा बनाते चले जाओ, ऐसी मेरी सदैव कामना

महानन्द जी के साथ रहती है। अब हमारा यह विचार समाप्त अब वेदों का पाठ होगा।

३ पंच कोषो का वर्णन २२-०२-१९७७

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण-गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परम-पिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा प्रतिभाशाली है। उसका जो ज्ञान और विज्ञानमय-जगत् है, वह इतना अनन्त माना गया है कि वह सीमा से रहित है। वह सीमा में नहीं आता। वह परमात्मा चैतन है। उसी की चेतना से बेटा! यह शून्य जगत्, चैतन्य जगत् यह सर्वत्र क्रियाशील दृष्टिपात आ रहा हैं, यह सर्वत्र क्रियाशील है। क्रिया कर रहा है। प्रत्येक परमाणु क्रिया कर रहा है। प्रत्येक अणु क्रिया कर रहा है। प्रत्येक परमाणु क्रिया कर रहा है। प्रत्येक अणु क्रिया कर रहा है। प्रत्येक शब्द अपनी क्रिया कर रहा है। प्रत्येक प्राण अपनी क्रिया कर रहा है। मन अपनी क्रिया कर रहा है। विचार यह कि सर्वत्र ब्रह्माण्ड मेरे प्यारे! देखो, क्रियाशील है। अपने-अपने आसन पर क्रीड़ा कर रहा है।

मुनिवरों! देखो, एक-एक सूत्र क्रिया में लगा है। एक मानव वस्त्रों का निर्माण कर रहा है, एक मानव उन वस्त्रों को धारण कर रहा है। परन्तु जब उस वस्त्र का रूपान्तर हो जाता है, अथवा उस वस्त्र का स्थूल रूप समाप्त हो जाता है, तो उसका जो कण है, जो एक-एक कण में अपने रमण कर गया है, वह अपने स्वरूप में गति कर रहा है। वह परमाणु रूपों में गति कर रहा है। और वह जो परमाणु है, पुनः उनका रूपांतर होता रहता है। परमाणुओं से पुनः स्थूल बनता है, और स्थूल बन करके बेटा! पुनः वस्त्रों का निर्माण हो जाता है। तो परिणाम क्या? मुनिवरों! देखो, सर्वत्र यह जो ब्रह्माण्ड है, परमात्मा के राष्ट्र में जो पदार्थ हैं, अथवा जितना भी यह जड़ जगत् अथवा शून्य जगत् है, इसका रूपान्तर होता रहता है। और एक-दूसरे में गतिमान है।

हमने बहुत पुरातन काल में कहा था मानव अपने मुखरा-बिन्द से शब्दों का उच्चारण कर रहा है। परन्तु उस शब्द में गति है और वह शब्द जितना भी सात्विक होता है, जितना भी मार्मिक होता है। जितना वह दर्शनों से गुथा हुआ होता है, उतना ही उस मानव का चित्र शब्द के साथ में जाकर के बेटा! द्यु-मण्डलों का निर्माण करता है। मेरे प्यारे! वह द्यु-मण्डलों का निर्माण कर रहा है। तो विचार क्या? मुनिवरो। देखो, जितना भी यह शब्द है, वह पवित्र होता है, बेटा! वह काल मुझे स्मरण आ रहा है, जब महाराजा अश्वपति के यहाँ विद्यालय में बेटा! अध्यापन का कार्य करते रहते थे। अध्यापन में एक पंक्ति में ब्रह्मचारी विद्यमान हंव, और उसी पंक्ति में राजा का पुत्र है। उसी पंक्ति में प्रजा का पुत्र है उसी में मानो चारों वर्णों के पुत्र विद्यमान हैं। परन्तु शिक्षा एक ही प्रकार की है।

सबसे प्रथम मानव के लिए यह कहा गया है कि हे ब्रह्मचारी!। तू अनुशासन में रह। तेरा अनुशासन विचित्र होना चाहिए। जब बालक अनुशासन में रहता है, तो आचार्य उससे पूर्व से ही अनुशासन में रहता है। जब दोनों अनुशासन में रहते हैं, तो जैसे मानव का शब्द अनुशासन में गति करके परमाणु अपनी गति में गतिमान हो करके दार्शनिक शब्द, सतोगुणी शब्द द्यु-लोक को प्राप्त होता है। इसी प्रकार मानो विद्यालय ऊँचा बनता है। क्योंकि देखो, वह जो शब्द है वही तो ऊँचा बना रहा है वही तो इस संसार का निर्माण कर रहा है। पुत्रो! शब्द ही राष्ट्र का निर्माण कर रहा है। शब्द ही मानो देखो, योगी को योगी बना रहा है। शब्द ही मुनिवरों! प्राणेश्वर कहलाता है। मानो शब्द अपने-अपने आँगन में ध्वनि के साथ में शब्दों के रूप में परिणत करते रहते हैं।

हमने बहुत पुरातन काल में कहा था कि इन्हीं शब्दों को मानव जब साधना में प्रवेश करता है, तो उस समय वह सबसे प्रथम वह अन्न के क्षेत्र में प्रवेश करता हैं, अन्न के जब क्षेत्र में जाता है कि हमारा जो अन्न है, वह कैसा होना चाहिए? बेटा! उस अन्न में सर्व योग प्रयत्न विद्यमान रहते हैं। जितना भी योग साध्य है, जितना भी

परमाणुवाद है, जितने भी मुनिवरों! मानव के अंग हैं वे सर्व मानव के अन्न में विद्यमान रहते हैं। आज कोई मानव यह कहता रहे कि अन्न किसी भी प्रकार का हो उसका विचारों पर अन्तर्द्वन्द्व नहीं होता परन्तु जब मानव सूक्ष्म क्षेत्र में पहुंचेगा, योग के क्षेत्र रहस्यों में प्रवेश करेगा वहाँ उसे अन्न की धाराओं का ज्ञान प्रतीत होता है। अन्न की तरंगों की वहाँ प्रतीति होती है।

मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। राजाओं के राजकोष का ऋषि-मुनि अन्न ग्रहण नहीं करते। जो महान् तपस्वी होते हैं, जो ब्रह्मवेत्ता बनना चाहते हैं, राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाना चाहते हैं, प्राण और मन की क्रिया को जानना चाहते हैं। मुनिवरों! राष्ट्र उन ऋषियों होता है, राष्ट्र से ऋषि नहीं होता। बेटा! यह वाक्य तुम्हारे विचार में आना चाहिए। क्योंकि राष्ट्र को जन्म देने वाला ऋषि है। राष्ट्र को जन्म ऋषि देता है। राष्ट्र ऋषि को जन्म नहीं देता। तो मेरे पुत्रो! आज जब हम यह विचारते रहते हैं कि ऋषियों का जीवन महान् और पवित्र होता है। योगी जब प्राण के क्षेत्र में जाता है, मुझे वह वाक्य स्मरण आता रहता है, महर्षि याज्यवल्क्य मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान रहते। प्रातःकालीन भ्रमण करते तो मुनिवरों! देखो, कुछ अन्न लाते भयंकर वनों से, मानो उस अन्न को लाते थे जिस अन्न पर किसी भी प्राणी का अधिकार नहीं रहता था। केवल प्रकृति और परमात्मा का उस पर अधिपथ्य रहता था। तो मेरे प्यारे! देखो, उसको पान करते थे और पान करके मानो ऊँची उड़ान उड़ते रहते थे। और उनकी कैसी उड़ान रहती थी? जो ब्रह्म में, प्राणों में मनों में बेटा! विचरण करते रहते थे।

मेरे प्यारे! देखो, सबसे प्रथम मानव को, साधक को यह विचारना है कि हमारा अन्न कैसा होना चाहिए? जिसे अन्नमय कोष कहा जाता है। अन्न के कोष के विचारों में जाना चाहिए। मेरे प्यारे! अन्न के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि अन्न का निर्माण करने वाली मेरी प्यारी माता भी पवित्र होनी चाहिए। अन्न का पान करने वाला भी विचारों में पवित्र होना चाहिए। मेरे प्यारे! जिस प्रकार का, जिस भूमि का, जिस स्थली का अन्न होता है वह भी उतना ही पवित्र होना चाहिए। तो तीन धाराएं अन्न की होती हैं, उस अन्न में तीन प्रकार की तरंगें होती हैं, वे तरंगें ही मुनिवरों! साधक को ऊँचा बनाती हैं मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय वर्णन करते हुए कहा था, कि अन्न का प्रभाव आज का समाज स्वीकार नहीं करता। मैं यह कहा करता हूँ, जीवन का हमारा कुछ सूक्ष्म सा अनुभव यह है, वह अनुभव यह है कि अगर अन्न पवित्र नहीं होगा तो कोई मानव ऋषि बन ही नहीं सकता। क्योंकि मुझे वे काल स्मरण आते रहते है, जिन कालों में ऋषि और मुनि थे, दो प्रकार की धाराएं होती हैं। एक मानव ऋषि कहलाता है, एक मुनि कहलाता है। एक मानव देखो, वृत्तियों में रमण करने वाला साधक कहलाया जाता है। प्रत्येक मानव को साधक बनाना है। साधक बनने वाला प्राणी मेरे प्यारे! मानवता में ऊँचा रहता है। इसलिए विचार विनिमय क्या? वेद का आचार्य यह कहता है, वेद का ऋषि यह कहता है, आचार्य यह कह रहा है कि हे मानव! तू अपनी मानवता में इतना ऊँचा बन साधक बनना है, तो इतना महान् बन कि तेरे व्याकरण की ज्योति भी मानो जो अन्न तेरे मस्तिष्क में जो मानो तेरे त्रिवेणी के स्थान में दो कृतिका होती हैं। वह जो कृतिका स्वरों में अपना स्वर ध्वनियां करती रहती हैं। हे योगी! तू उस अन्न को अपने में ग्रहण कर। तू अपने श्रोत्रों को बाह्य जगत् से आन्तरिक जगत् में लगा। उस अन्न को तू स्वीकार कर मानो जिससे तेरा जो व्याकरण है, तेरी जो स्वर तरंगें हैं वह मानो देखो, ब्रह्माण्ड की तरंगें तेरे समीप आती रहें। परन्तु देखो, आज मैं तुम्हें इतने गम्भीर क्षेत्र में नहीं ले जाऊँगा।

केवल विचार विनिमय यह कि अन्न की तीन धाराएं हैं। अन्न पवित्र होना चाहिए। जब मानव का अन्न पवित्र हो जाता है, तो मुनिवरों! उसकी स्वतः ही तीन धाराएं बनना प्रारम्भ हो जाती हैं। तीन धाराएं क्या हैं? तीन धाराओं को बनाने वाला कौन है? वह अन्न है। क्योंकि उसी से तरंगें उत्पन्न होती हैं, और अन्न के शरीर में जाने के पश्चात्

तीन प्रकार के भाग स्वतः बन जाते हैं। एक भाग तो स्थूल बन जाता है। स्थूल का स्थूल में रमण कर जाता है। द्वितीय भाग रक्त में परिवर्तित हो जाता है, और तृतीय भाग तरंगों में ओत-प्रोत हो जाता है। यह मुनिवरों! देखो, अन्न के तीन प्रकार से, तीन प्रकार की धाराएं स्वतः निर्मित हो जाती हैं, और वह जो स्थूल है, मुनिवरों! वह तो पृथकता को प्राप्त हो गया और जो रक्त का संचार है, मानो वह गति को प्राप्त हो गया है। मेरे प्यारे! वह गतिवान बन गया और वह जो तरंगें हैं, अन्तरिक्ष का वे निर्माण करती रहती हैं। तो विचार विनिमय क्या? कि वे जो तरंगें हैं, उन्हीं तरंगों से मानव को जिसको त्रिवेणी का स्थान कहते हैं, वहाँ कृतिका होती है, दो होती हैं परन्तु मध्य में एक धारा कृतिका होती है। मानो जब वह रमण करने लगती हैं। वह साधक को इतना प्रकाश में ले जाती हैं, इतने महान् ऊँचे जगत् में ले जाती हैं, मेरे पुत्रो! देखो, अन्नमय कोष की तीनों जो श्रेणियां हैं। इन कोषों की तीन जो धाराएं हैं, वह अपने अपने कोष को एकत्रित करना प्रारम्भ करती हैं, और प्रारम्भ करके बेटा! देखो, जो मानव का ब्रह्माण्ड और पिण्ड की जो ऋषि-मुनि कल्पना करते हैं, वह ब्रह्माण्ड और पिण्ड की जो ऋषि-मुनि कल्पना करते हैं। वह ब्रह्माण्ड की कल्पना मुनिवरों! देखो, मानव अपनी तरंगों में ओत-प्रोत हो करके उन कृतिकाओं में रमण करके बेटा! देखो, अपने में वह अनुभवी बन जाता है। वह स्वतः उसमें रमण करने लगता है। जब उससे रमण करता है, तो सर्व ब्रह्माण्ड का जो चक्र है। उसको वैज्ञानिक नाना प्रकार की तरंगों से नहीं नाना प्रकार के परमाणुओं के मिलान से नहीं जान सकता।

वह जो योगी है, वो जो सारे चक्र और यन्त्र उनका जो निर्माण है। उसमें प्राण और मन दोनों की टुक्टुकियां (संयुक्त क्रिया) दोनों का प्रहार होता है मुनिवर! यह जो ब्रह्माण्ड है, जो ब्रह्माण्ड हमें दृष्टिपात आ रहा है, लोक-लोकान्तरों वाला जगत् है, उसको वैज्ञानिक यह कहते हैं कि एक दूसरा ब्रह्माण्ड, एक दूसरे में गति कर रहा है। एक-दूसरी आभा, आभा में रमण कर रही है। मुनिवरों! देखो, यह जो प्राण है और मनसत है इन दोनों का सन्निधान दोनों का सम्मेलन होने से मानो एक दूसरा गति करके मुनिवरों! मानव बाह्य जगत् में आन्तरिक जगत् के ब्रह्माण्ड की कल्पना करने लगता है। और वह सर्वत्र ब्रह्माण्ड की जो कल्पना है मेरे प्यारे! वह कल्पना बनकर के ही नहीं रहती। वह अपने स्वरूप में गति करने लगता है। अपने स्वरूप में ही अनुभव करने लगता है। अपने ही स्वरूप में पृथ्वी के गर्भ में जब वह जाता है। अपने ही स्वरूप में अग्नि की धाराओं में, अग्नि की ज्वालाओं में निहित हो जाता है। अग्नि की तरंगों में रमण करने लगता है। मानो अपने ही स्वरूप में वह जो योगेश्वर है, वह वायु और अन्तरिक्ष दोनों के परमाणुओं को जानता हुआ इस ब्रह्माण्ड की सर्वत्र कल्पना उसके समीप आनी प्रारम्भ हो जाती है।

मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें साधना की चर्चा करने आया था। साधना की चर्चा तो प्रारम्भिक यह है, जो बेटा! मैंने तुम्हें उच्चारण किया कि अन्न पवित्र होना चाहिए। अन्न से ही मुनिवरों! रथ बनता है। वह साधना का एक रथ बनता है, और उस रथ में विद्यमान होने वाला कौन है? मेरे प्यारे! जीवात्मा है। जीवात्मा बेटा! रथ पर विद्यमान हो करके ब्रह्मा के द्वार को चलता है। ब्रह्म के आँगन को चलता है, और जब ब्रह्म के आँगन को चलता है तो मुनिवरों! ब्रह्म के आँगन में उस रथ में विद्यमान होने वाले जीवात्मा के समीप पृथ्वी के जो आठों अंग हैं, योग के जो आठों अंग है। पंखड़ियों से रथ का निर्माण होता है बेटा! आठों जो अंग हैं योग के धारणा में, समाधि में, धारणा, ध्यान, समाधियों में परिणत होता हुआ वह ऐसे रथ मैं जीवात्मा विद्यमान हो जाता है कि उस रथ का जो गमन है, वह ऊर्ध्व गति को जा रहा है। वह जो विमान है साधक का मुनिवरों! देखो, वह ऊर्ध्व गति को जा रहा है। अष्ट चक्राः नव द्वारा। देखो, आठों जो चक्र हैं वह जो ब्रह्मात्मा है ब्रह्मात्मा क्यों कहलाता है? क्योंकि उसका जो विचार है उसके जो उत्थान हैं वह ब्रह्म के लिए होता जा रहा है। तो मुनिवरो? वह जो आठों प्रहरी हैं, यह आठों जो चक्र हैं। इनको पार होता हुआ, ओ३म् भुः, भूवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्, मानो इनमें रमण करता हुआ

एकांकी सत्य में रमण करता हुआ मुनिवरों! वह आठों अंगों को पार करता हुआ, आठों चक्रों को पार करता हुआ, वह सत्य में रमण करता है। उसे संसार में मिथ्या प्रतीत नहीं होता सर्वस्व। क्योंकि वह स्वयं शब्द है, शब्द की कल्पना है, शब्द का साथी बना हुआ है और मुनिवरों! यह ब्रह्माण्ड उसे सत ही सत प्रतीत होने लगता है। हे प्रभु! यह सत ही सत् है, मानो क्रिया है, क्रिया में सत्यता है और वह जो सत्य है, उसमें मिथ्यावाद नहीं होता। अन्तर्द्वन्द्व नहीं होता, वहाँ अन्धकार नहीं होता। क्योंकि प्रभु के राष्ट्र में बेटा! प्रकाश ही प्रकाश रहता है। वहाँ अन्धकार नहीं होता।

आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार देना केवल यह चाहता रहता हूँ कि आज हम मुनिवरों! आठ चक्रः नव द्वारः जिनके ऊपर मानो सयंम करना चाहते हैं। इनके ऊपर सयंम की करते हुए नाना प्रकार की धाराओं को पंखड़ियों में रमण करना चाहते हैं। मेरे पुत्रो! आज का हमारा विचार यह क्या कह रहा है? मैंने अभी-अभी कुछ तुम्हें सूक्ष्म परिचय दिया है और वह परिचय क्या है? कि अन्नादम् भूतं प्रवेः। अन्नपवित्र होना चाहिए। अन्नों में जो कोष है इसी कोष को हमें सबसे प्रथम जानना है।

उसके पश्चात् अन्न कोष के पश्चात् मुनिवरों! वह विप्रः लोकः। प्राणों में रमण करता है। प्राणों को जानता है! एक दूसरे में प्राणों को जानता हुआ वे जो तरंगें हैं, उन्हीं तरंगों में प्राण ओत-प्रोत रहता है वह प्राण कोष में रमण करता है। मानो साधक उनका मिलान मिलाता है, साधक मिलाता नहीं है मानो वह तो स्वतः अन्नमय कोषों के साथ-साथ प्राणमय कोष में रमण करता रहता है। स्वतः ही उसे मानो अप्रः प्राप्त होती रहती है।

उसके पश्चात् वह मनोमय कोष में चला जाता है। यह जो मानव के द्वारा जो मन है, यह मन प्रकृति का सूक्ष्म तन्तु माना जाता है। सबसे सूक्ष्म तन्तु है। उस तन्तु को जानने वाला क्योंकि इसी मनो में मेरे प्यारे! सर्व ब्रह्माण्ड क्या, मानो जितना भी यह परमाणुवाद, सृष्टिवाद है। यह मन की ही रचना है, और मन ही मुनिवरों! इसमें निहित रहता है। यह मन ही इनको एकत्रित करता है। वह कोष कहलाता है। मनोमय कोष कहलाया जाता है। वह जो मनोमय कोष है, मेरे प्यारे! जितना भी प्रकृति का यह प्रपंच है, जितनी भी प्रकृति की यह रचना है, चाहे वह अणुवाद में है, परमाणुवाद में है, मेरे प्यारे! यह सब मन की रचना, सबका निर्माण करने वाला है। मानो विभक्त करने की क्रिया इसमें विशेष है, विभक्त क्रिया को कोष मेरे प्यारे! इसमें विद्यमान रहता है। चाहे वह पृथ्वी में विभाजन होना हो चाहे विचारों में विभाजन हो रहा हो, चाहे परमाणुवाद में विभाजन हो रहा हो चाहे मेरे प्यारे! लोक-लोकान्तरों के रूप में विभाजन हो रहा हो, चाहे अग्नि के रूप में विभक्त क्रिया दृष्टिपात हो रही हो। यह विभाजन करने वाला कौन? प्रकृति का एक सूक्ष्म तन्तु, एक तरंग है, जिस तरंग को मेरे प्यारे! मनुष्यतत्व कहा जाता है। वह मन है उसे मनोमय कोष कहते हैं, जो विभाजन कर रहा है, वो विभक्तता जिसमें भी है वह सब मनों के कारण है।

मेरे प्यारे! यह विभाजनवाद उस काल में त्यागता है। जिस काल में बेटा! प्राणों से इसका मिलान हो जाता है। प्राणों में जब इसकी विचारधारा उसके गर्भ में परिणत हो जाती है। तो मेरे प्यारे! मन का वाहक् समाप्त हो जाता है। मन की धाराएं, मन का विभक्त होना, मन में विभाजनवाद की क्रियाएं समाप्त हो जाती हैं। मन की आभा समाप्त होने के पश्चात् मेरे पुत्रो! मानव शून्य गति को प्राप्त होता है। परन्तु वह जो आत्मा इन तीनों चक्रों की आभाओं में विद्यमान है। जो आत्मा ऊर्ध्व गति को जा रहा है, अन्न को त्याग रहा है मानो प्राणों मय कोषों को त्याग रहा हैं मुनिवरों! मनोमय कोषों को त्याग रहा है। वह कहाँ जा रहा है?

जो मन के पश्चात् विज्ञानमय कोष की प्रतिभा आती है। यह जो विज्ञान है, मुनिवरों! यह दो प्रकार का माना गया है। एक विज्ञान वह कहलाता है, जिसे भौतिकवाद कहते हैं, जिसमें परमाणु विद्या है। मानो वह मन के अन्तर्गत ही आती है। परन्तु एक विचारधारा, एक विज्ञान की तरंगें हैं जो यौगिक कहलाती हैं। एक रूढ़ि होती है।

रूढ़ि वह कहलाती है, जो प्रकृति के सन्निधान से आती है, जो मनस्ता के सन्निधान से आती है।

परन्तु देखो, यौगिक वह होती है जो मेरे प्यारे! अनुभव में आती है, वहाँ मनस्तव काम नहीं आता। वहाँ केवल आत्मा में परमात्मा के गुण आने प्रारम्भ हो जाते हैं। मुनिवरों! जैसे अग्नि में लौ देने के पश्चात् उसमें अग्नि के परमाणु आने प्रारम्भ हो जाते हैं। अग्नि के परमाणुओं से मानो वह अग्नि का स्वरूप धारण कर लेती है। जब अग्नि के स्वरूप को धारण कर लेती है, तो मुनिवरों! अग्निमय बन जाती है। इसी प्रकार मुनिवरों! देखो, आत्मा जो चेतना है, यह प्रकृति के गुणों को त्याग करके यह परमात्मा के गुणों में गुण-वान् होने लगता है, और जब परमात्मा के गुण इसमें प्रवेश कर जाते हैं। तो मुनिवरों! यह विज्ञानमय कोषों को भी त्याग करके आनन्द के क्षेत्र में रमण कर जाता है। यह आनन्द ही आनन्द में प्रवेश करता है। क्योंकि उसके गुण इसमें विशेष आ जाते हैं। उस आनन्द को सोचता रहता है। उस को हमारे यहाँ आनन्द कहते हैं। क्योंकि परमात्मा आनन्द है, परमात्मा में विडम्बना नहीं है। परमात्मा स्वतः आनन्द है। उस आनन्द को प्राप्त करके जीवात्मा आनन्द के क्षेत्र में बेटा! विभोर हो जाता है। मानो ब्रह्माण्ड उसके लिए खिलवाड़ बन जाता है। परमात्मा जैसे रचयिता है, और इसमें रमण कर रहा है। परन्तु इससे पृथक् भी है। इसी प्रकार मुनिवरों! देखो, आत्मा में उन गुणों का गुण-धान हो जाता है और गुण-धान होने के पश्चात् मानव उस आनन्द में विभोर हो जाता है। अपते में प्रतिष्ठित हो जाता है। अपने में रमण करता रहता हैं तो मुनिवरों! विचार विनिमय क्या? कि यह योगी बाह्य जगत् में नहीं आता, वो योगी बाह्य जगत् में न आ करके मुनि बन जाता है, मानो वह तो मधुर विद्या में रमण करता है। उस मधु विद्या में रमण करने वाला बेटा! अन्न को जानता है।

विचार विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा तो प्रकट करने नहीं आया हूँ। यह तो तुम्हें प्रतीत ही हो। मैं तो मानो अंकुरों की चर्चा कर रहा हूँ। मैं वृक्ष की चर्चा नहीं कर रहा। जिन अंकुरों से वृक्ष बनता है, केवल साधना की चर्चा कर रहा था। हे साधक! यदि तू साधना की चर्चा कर रहा था। हे साधक! यदि तू साधना में जाना चाहता है, साधना को जानना चाहता है, साधना में प्रवेश करना चाहता है तो सबसे प्रथम मौन होकर के तेरा अन्न पवित्र होना चाहिए। अन्न का अभिप्राय यह है कि जो भी कुछ तुम भक्षण करते हो, जिससे तुम्हारी तृप्ति होती है, जो सर्वत्र अन्न माना गया है। मैंने बहुत पुरातन काल में पुत्रें! तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि संसार में दो प्रकार के अन्न होते हैं। एक अन्न वह होता है जो मुनिवरों! योगेश्वर पान करता है। एक अन्न वह होता है जिसको पान करने से मानव स्थूल को प्राप्त होता है। तो मुनिवरों! दो प्रकार का अन्न नाना रूपों में रमण कर रहा है। एक अन्न आत्मा का है और एक अन्न शरीर का है। अहाः स्थूल अन्न को पान करने से मानव का शरीर स्थूल बनता है।

सूक्ष्म ब्रह्मेः आत्मा का ज्ञान-विज्ञान है। जो आध्यात्मिकवाद है, आध्यात्मिक चर्चाएं हैं वह आत्मा का भोजन है। इन दोनों प्रकार के भोजों को हमें ऊँचा बनाना है। दोनों प्रकार के भोजन को महान् बनाना है। जिससे दोनों प्रकार के भोजन को हम पान करते हुए, यह जो संसार है, यह दोनों प्रकार का भोज लेकर के मानो अपने में प्रतिष्ठित हो जाता है। आओ मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। एक समय बेटा! मुझे कुछ चर्चाएं महर्षि विभाण्डक मुनि, महर्षि दधीचि से कुछ चर्चाएं करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। महर्षि दधीचि मुनि महाराज जब भयंकर बन में विद्यमान रहते थे तो एक समय कहा गया महाराज! तुम भयंकर वन में रहते हो, क्या पान करते हो? उन्होंने कहा मैं अन्न को पान करता हूँ। वह ऐसा विचित्र था। महात्मा दधीचि ने प्राणायाम किया और प्राणों का एक सूत्र मिलाया, मुनिवरों! वायु मण्डल में जो परमाणु गति करते हैं, उन परमाणुओं से अपने भोजनालय की तृप्ति कर लेते थे। मानो उसी से वह तृप्त हो जाते थे और तृप्त हो करके मुनिवरों! देखो, जैसे कोई मानव अन्नमय कोष को जानता है, प्राणमय कोष को जानता है। दोनों कोषों का मिलान करना जानता है। जैसे फल विद्यमान है तो मुनिवरों! देखो, अपने नेत्रों की ज्योति और घ्राण से जो प्राण आता है, वह प्राण का और ज्योति का दोनों का

मानो एक तारतम्य मिल जाता है, और तारतम्य मिल करके उस समय वह सूर्य प्राणायाम करता है, और सूर्य प्राणायाम करता हुआ उसमें खेचरी मुद्रा लगाता है। तो मुनिवरों! वह साधक फलों के सूक्ष्म अणु को अपने में धारण कर लेता है। तो मुनिवरों! देखो, वह अपने में तृप्त हो जाता है।

साधना की जहाँ चर्चाएं हैं मैं इस गम्भीर और विचारणीय क्षेत्र में जाना नहीं चाहता हूँ। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है कि मानव साधना में क्या-क्या कर सकता है? जब साधना प्रारम्भ करता है, तो सबसे प्रथम अन्न को सूक्ष्म और स्थूल दोनों प्रकार के अन्नों को जानता है। सूक्ष्म अन्न कैसा होता है? और स्थूल अन्न कैसा होता है? मानो, देखो, स्थूल अन्न जो है वह मानव के शरीर को वरिष्ठ बनाता है। सूक्ष्म जो अन्न हैं वह प्राण को ऊँचा बनाता है। जब प्राण ऊँचा बनता है, तो उससे मनोबल आता है। जब मन ऊँचा होता है तो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार एक सूत्र में आ जाते हैं। मानो चित्त में जो मन का कोष है, मनोमय कोष है, वह कैसा कोष है? मेरे प्यारे! वह इतना विचित्र है कि करोड़ों-करोड़ों जन्मों के संस्कार मुनिवरों! चित्त विद्यमान होते हैं। वह मनों का ही तो कोष कहलाता है। क्योंकि मन बुद्धि, चित्त, अहंकार ये मन की ही धाराएं हैं। ये मन की ही तरंगें हैं। मेरे पुत्रो! देखो, उसी से अन्तरिक्ष का निर्माण होता हैं उसी से वह नदियों का निर्माण कर लेता है, उसी से वायु का निर्माण कर लेता है, उसी से अग्नि का निर्माण कर लेता है। वही मुनिवरों! नाना निर्माण करता हुआ, इस चित्त में जो संस्कार है उन संस्कारों को वह सूक्ष्म बना देता है और स्वतः सूक्ष्म बन करके मानव विज्ञान के आध्यात्मिक क्षेत्र में रमण करता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में रमण करता हुआ वे परमपिता परमात्मा के आनन्द को प्राप्त करता रहता है।

आओ मेरे प्यारे! सूक्ष्म अन्न से मानव का प्राण ऊँचा बनता है, प्राणों से मन ऊँचा बनता है और जब मन पवित्र और ऊँचा बन जाता है, तो इसमें चंचलता नहीं रहती, विडम्बना नहीं रहती। यह विज्ञानमयी तरंगों में ओत-प्रोत होता हुआ यह आत्मा आनन्द को प्राप्त होता है। तो विचार विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें बहुत सूक्ष्म रहस्य में ले गया हूँ। तरंगों में ले गया हूँ। परन्तु इसका एक-दूसरे से सन्निधान, एक-दूसरे से मिलान करने को आवश्यकता नहीं रहती। मानव का प्रारम्भिक जीवन ऊँचा बन जाता है, प्रारम्भिक साधना ऊँची बन जाती है। प्रारम्भिक साधना में मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब हम अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा उनके चरणों में ओत-प्रोत हो करके उनके चरणों की वन्दना करते रहते थे। अध्ययन करते रहते थे। जब प्रश्न करते थे तो मेरे प्यारे! वह पुनः सुन्दर उत्तर देते थे। जब वह उत्तर दिया करते थे उससे मुनिवरों! हमारा आत्मा पवित्र हो जाता और पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा करते थे, प्रभु! हमें साधना में परिणत करा दो, हम साधना में प्रवेश करना चाहते हैं।

तो पूज्यपाद गुरुदेव हमें प्राणों की दुकदुकी दिया करते थे। मानो अन्न की दुकदुकी दिया करते थे। अन्न और प्राण दोनों का सम्बन्ध है। क्योंकि प्राण ही तो अन्न को निगल जाता है, प्राण ही संसार को निगल जाता है। यह प्राण ही है मेरे प्यारे! जो प्रकृति को अकिंचन बना देता है। यह प्राण ही हैं, जो विस्तार रूप बना देता है। यह प्राण ही है, जो अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ने लगता है। तो यह प्राण ही प्राण अपना कार्य करता है। प्राण का जो भोज है। वह अन्न है अन्न को पान करता है। क्योंकि अन्न उसी में समाहित हो जाता है। तो इसलिए मेरे प्यारे! जब अन्न प्राण में समाहित हो जाता है, प्राण मन में समाहित हो जाता है और क्योंकि जब प्राण के स्वरूप में जब यह मन प्रवेश कर जाता है, इसीलिए हमारे ऋषि मुनि प्राणायाम किया करते हैं। प्राणायाम करने वाला जो महापुरुष होता है। उस प्राणायाम करने वाले को कोई रोग नहीं होता। प्राणायाम करने वाले को बेटा! विडम्बना नहीं होती। प्राणायाम करने वाले का संसार में कोई शत्रु नहीं होता। प्राणायाम करने वाले का संसार भी मित्र बन जाता है। क्योंकि यह प्राण ही संसार में ओत-प्रोत रहा है। जब यह प्राण ही प्राण है तो कौन इसका शत्रु बन पाएगा।

यह प्राणायाम कहाँ किया जाता है? यह मन ही तो प्राण में समाहित हो जाता है। और जब यह मन प्राण में समाहित हो जाता है। और जब यह मन प्राण में समाहित हो जाता है, तो विभक्त क्रिया समाप्त हो जाती है।

जब विभक्त क्रिया नहीं रहती, तो राग-द्वेष नहीं रहता। जब राग-द्वेष नहीं रहता और प्राण मन में प्रवेश कर गया है, तो उसका कोई शत्रु नहीं और जब शत्रु नहीं तो बेटा! वह संसार का मित्र बन जाता है। आओ मेरे पुत्रो! हमें विश्वामित्र बनना है, विश्व का मित्र।

४ यज्ञ के भिन्न स्वरूप ३०-०४-१९७७

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण-गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव, परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि उसी की प्रतिभा इस प्रकृति के कण-कण में ओत-प्रोत है। मानो उसमें आभायित हो रही है। और जितना भी यह जड़-जगत, चैतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है, उस सर्वत्र का दृष्टा वह मेरा देव चैतन्य ही माना गया है। क्योंकि वह संसार को क्रियाशील बना रहा है। प्रत्येक परमाणु अपने-अपने आँगन में रमण कर रहा है। प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी आभा में चेतना के संदर्भ में रह करके गतिशील होता हुआ दृष्टिपात आ रहा है। आज हम जब इस संसार की गति को दृष्टिपात करने लगते हैं, तो सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक आभा में, एक माला के सदृश्य हमें दृष्टिपात होता है। जिस प्रकार नाना प्रकार के मन के जब वह सूत्र में पिरोए जाते हैं तो माला के रूप में दृष्टिपात आती है। इसी प्रकार यह जो विभक्त क्रिया इस संसार में हो रही है, जो भिन्नता में मानव को दृष्टिपात होती है। जब मानव ज्ञान और विवेक के क्षेत्र में प्रवेश करता है तो मुनिवरों! यह संसार एक प्रकार की माला के रूप में दृष्टिपात आने लगता है। क्योंकि यह संसार एक सूत्र में पिरोया हुआ है। एक चेतना में पिरोया हुआ है।

आज का हमारा वेदमन्त्र यह क्या कह रहा था? प्रारम्भ का वेदमन्त्र यह कह रहा था कि हे मानव! तू अपने जीवन को याज्ञिक बनाने का प्रयास कर। क्योंकि तेरा जीवन वास्तव में यज्ञमय होना चाहिए। प्रत्येक मानव को अपने जीवन को यज्ञमय बनाने की उत्कंट इच्छा रहती है कि मेरा जीवन महान बने। मेरे जीवन में किसी भी प्रकार की त्रुटि नहीं होनी चाहिए। परन्तु जब वह संसार के क्षेत्र में आता है, उसकी परिक्रियाएं भिन्न-भिन्न रूपों में परिवर्तित होती रहती हैं। परन्तु आज का विचार क्या, कि प्रत्येक मानव अपने जीवन को यज्ञमय बनाना चाहता है।

आज मुनिवरों! मैं तुम्हें एक ऐसे ऋषि के द्वार पर ले जाना चाहता हूँ, जहाँ ऋषि-मुनि विद्यमान हो करके नाना प्रकार के यागों की चर्चाएं करते रहे हैं, नाना प्रकार के वेद की आभा के ऊपर नाना प्रकार जो याग होते हैं, उसके ऊपर प्रायः अनुसन्धान करते रहे हैं। वेद का मन्त्र यह कह रहा था यज्ञ मनश्चय व्रत देवः विमानन वृत्ति कृत लोकः वेतु व्रणम् वायु वृतम् लोकः द्यो देवः मेरे पुत्रो! यह वेद का मन्त्र मानव को यह बाध्य कर रहा है, हे मानव! तू याज्ञिक बन करके, हे यज्ञमान! तेरा जो विमान है, यह जो यज्ञशाला है, यह तेरा विमान बन करके अन्तरिक्ष में, द्यो-लोकों में गति करता है। ऐसा वेद का आशय कहता है।

एक समय मध्य रात्रि का काल था। मध्य रात्रि के काल में बेटा! वैश्मपायन ऋषि महाराज अपने आसन पर विद्यमान हैं, वैश्मपायन अत्रि कहते थे क्योंकि अत्रि गोत्र में थे तो मेरे प्यारे! वैशम्पायन जब यह विचारने लगे कि वेद का मन्त्र यह कहता है, क्योंकि आगे नाना मन्त्र इस प्रकार के आ रहे थे क्योंकि वह याग सूत्र कहलाता था। याग जो सूत्र था वह मानव को विचार विनिमय करने के लिए बाध्य रहा था कि मानव का चित्र कैसे जाता है? यज्ञमान का चित्र कैसे बन करके चलेगा? तो मुनिवरों! देखो, इसके ऊपर यह वेदमन्त्र था और ऋषि वैश्मपायण अपने आश्रम में विद्यमान हो करके चिन्तन करने लगे, मनन करने लगे, ऊँची उड़ान उड़ने लगे तो विचार आया कि विमान कैसे बनेगा? मेरे प्यारे! प्रातः कालीन हो गया। मध्य रात्रि से प्रातः काल तक वह चिन्तन करते रहे। इतने में महर्षि विभाण्डक मुनि आ पहुंचे। महर्षि विभाण्डक मुनि कहते हैं, कहो जी वैश्मपायण! आज तुम्हारा चित्त मुझे प्रसन्न नहीं दृष्टिपात हो रहा है। वैश्मपायण ऋषि बोले कि महाराज! मेरे समीप एक वेदमन्त्र आया है। और उसके संसर्ग में नाना मन्त्र हैं। परन्तु वह मन्त्र अपनी यही एक आभा प्रकट कर रहे हैं कि यज्ञशाला में जो

यज्ञमान है, उसका विमान बन करके अन्तरिक्ष में जाता है। वह कैसा याग है, जिस याग में यज्ञमान विराजमान होकर के उसका विमान बन जाता है। और वह द्यौ-लोकों को प्राप्त होता अन्तरिक्ष लोकों को जाता है। क्या इसको आप हमें निर्णय कर सकेंगे।

महर्षि विभाण्डक मुनि कहते हैं कि निर्णय क्या? इसके ऊपर चिन्तन किया जाए। इसकी क्रिया में लाना है, तो तुमन एक याग की रचना करो। और जब याग की रचना होगी तो इन वाक्यों का स्पष्टीकरण हो जाएगा। मेरे प्यारे! वैश्मपायन, महर्षि विभाण्डक, महर्षि समीक इत्यादि ऋषि विद्यमान थे। सर्वत्र ने यही विचारा कि हम याग की रचना करें। और याग की रचना करके हम उसके ऊपर अनुसंधान करें। और उसके संसर्ग में जो भी वाक्य आएगा अथवा जो भी प्रतिभा हमें दृष्टिपात होगी उसी के ऊपर अपने विचारों को निष्ठावान बना सकेंगे। मेरे पुत्रो! देखो, यही विचार होता रहा। मुनिवरों! अन्त में यह चिन्तन किया गया कि चलो राम की अयोध्या में चलेंगे। और राम की अयोध्या में जाकर के एक याग कराएंगे। क्योंकि याग के द्वारा ही हम इसको जान सकेंगे।

तो मेरे प्यारे! देखो, महर्षि वैश्मपायन, महर्षि विभाण्डक, महर्षि समीक, महर्षि पनपेतु, महर्षि सोमकेतु इत्यादि ऋषि आश्रम से प्रस्थान करने लगे। जब कोई निर्णय नहीं हुआ, दार्शनिक रूपों में तो निर्णय आता है कि मानव के विचार कहीं के कहीं गति करते हैं। वह स्थिर भी हो जाते हैं। मन और आत्मा से जो भी कर्म होता है। वह चित्त में प्रवेश कर जाते हैं। चित्त भी दो रूपों में रहता है। एक विशेष चित्त होता है, एक सार्व-भोम चित्त का मण्डल होता है। वह जो चित्त का मण्डल है, वह मानव के द्वारा होता है। और एक चित्त का मण्डल द्यौ-मण्डल के द्वारा रहता है। वह स्पष्टी चित्त कहलाता है। स्पष्टी चित्त में ही सूक्ष्म शरीर रमण करता रहता है। इस सम्बन्ध में ऋषि-मुनि उड़ान उड़ते रहे। हो सकता है कि वेद का मन्त्र यही कह रहा है कि विमान बनता है हो सकता है शब्दों का विमान बनता है। ऐसा ऋषि अपने आँगन में निर्णय कर रहे हैं। परन्तु उनके विचारों में यह आया कि हम इसको क्रियात्मक दृष्टिपात करेंगे।

मेरे प्यारे! नाना ऋषियों ने वहाँ से, आश्रमों से प्रस्थान किया और भ्रमण करते हुए वह सायंकाल क्या, रात्रिकाल के आनन्द मनाते हुए ऋषिवर प्रातःकाल होते ही अयोध्या में आ पहुंचे। तो भगवान राम के यहाँ अयोध्या में यह नियम था कि प्रत्येक प्राणी उनके राष्ट्र में याज्ञिक था। यज्ञमयी जीवन को बनाने वाला था। क्योंकि राम का यह उपदेश रहता था अपनी प्रजा को कि किसी प्रकार की भी कर्त्तव्य विहीनता नहीं होनी चाहिए। कर्त्तव्य का पालन होना चाहिए। कर्त्तव्य के पालन में सबसे प्रथम याग हो क्योंकि प्रत्येक गृह सुगन्धित हो जाए। और उसके ऊपर मानव के जीवन का अध्ययन होना चाहिए। मानव के जीवन में भी सुगन्धि होनी चाहिए।

मेरे पुत्रों! मानव के जीवन में नाना प्रकार की सुगन्धि होती है। परन्तु एक सुगन्धि मानव के जीवन में चरित्र की सुगन्धि होती है। वाणी की सुगन्धि होती है, चक्षु की सुगन्धि होती है। परन्तु ज्ञान और विज्ञान की भी एक सुगन्धि होती है। मेरे पुत्रों! हमारे यहाँ यह माना गया है कि चारित्रिक जो निर्माण है, अथवा चारित्रिक जो सुगन्धि है वह एक महान सुगन्धि कहलाती है। मेरे पुत्रो! वही सुगन्धि है, जो अपनी तरंगों से संसार के ज्ञान और विज्ञान को एकत्रित कर सकती है। तो सुगन्धि को लाना हमारा कर्त्तव्य है हमें अपने समाज में, अपने राष्ट्र में, अपनी मानवता में चारित्रिक निर्माण करना चाहिए। उसका निर्माण होता रहे।

बेटा! वह काल स्मरण है, भगवान राम के यहाँ जब राष्ट्र की स्थापना हुई लंका को विजय करने के पश्चात तो उन्होंने अपना राष्ट्रीय नियम बनाया। एक कर्म बनाया जो उनके रघुवंश में नाना प्रणालियों में, नाना प्रकार की नियमावली रही। मध्य काल में वह कुछ शन्तवना को प्राप्त हो गई। परन्तु, भगवान राम ने महर्षि वशिष्ठ इत्यादियों ने बेटा! उन नियमावलियों को पुनः से धारण कराने का प्रयास किया। तो मुनिवरों! ऐसा स्मरण है कि वह नित्य प्रति चारों विधाता अपनी यज्ञशाला में याग कर रहे थे। जब चारों विधाता याग कर रहे थे, तो ऋषियों का आगमन

हुआ। ऋषि अपने-अपने उचित आसनों पर विद्यमान हो गए। परन्तु राम ने जब याग समाप्त किया। याग समाप्त करने के पश्चात नाना मन्त्रीगण विद्यमान हैं। वह अपने मन्त्रीगणों को यह उपदेश दे रहे थे कि राष्ट्र को उन्नत बनाना हमारा कर्त्तव्य है। राष्ट्र ज्ञान और विज्ञान की तरंगें को धारण करने वाला हो। ऐसा भगवान राम का उपदेश चल रहा था। प्रत्येक प्राणी का जीवन त्याग और तपस्यामयी हो। विद्यालयों में त्यागी और तपस्वी ही पति-पत्नी शिक्षा देने में कुशलता को प्राप्त हो सकते हैं।

बेटा! वह काल जब मुझे स्मरण आता है, उस काल में यह नियमावली बनी हुई थी। जब नियम बनाया गया तो सबसे प्रथम यह नियमावली थी राष्ट्र और समाज का चारित्रिक जो निर्माण होता है वह मेरे प्यारे! विद्यालयों में होता है। तो इसीलिए उन्होंने विचारा कि विद्यालय पवित्र होने चाहिएं। तो उनके यहाँ नाना ऋषिवर पत्नि सहित शिक्षा प्रदान कर रहे थे। राम के काल में मेरे प्यारे! कन्याओं का विद्यालय, ब्रह्मचारियों का विद्यालय जो गृह को त्याग करके अपने ज्येष्ठ पुत्र को, वधु को मुनिवरों! अपना गृह का सर्वत्र त्याग करके, प्रसन्नता से त्याग करने के पश्चात जब विवेक से गृह को त्याग जाता है। मेरे प्यारे! वह विद्यालयों में अपने अनुभव ब्रह्मचारियों को जब प्रकट करते तो ब्रह्मचारी सुसज्जित हो जाते। ब्रह्मचारिणी मानो विद्यालय में पवित्र बन रही हैं क्योंकि वह गृह त्याग करके त्यागमयी और तपस्यामयी और यागमयी जीवन को बना कर वह ब्रह्मचारिणी ब्रह्मचारियों को शिक्षा प्रदान कर रही हैं। क्योंकि जहाँ मन की प्रवृत्ति स्थिर रहती है, मन में एक ओज की धारा रहती है। ज्ञान को जितना भी दूसरों को प्रदान करता है, उसकी उतनी ही उपलब्धि होती रहती है। प्रसन्नता से विशालता आती रहती है, ज्ञान में। विज्ञान में भी यही गति मानी गई है।

परन्तु जब यह नियम बनाया गया तो यह नियमावली राजा के राष्ट्र में चल रही थी। राम प्रातःकालीन याग करते और याग के ऊपर मानो इनका कुछ उपदेश होता और वह यह कहा करते थे, हे लक्ष्मण! यह राष्ट्र हमारा पवित्र होना चाहिए और राष्ट्र प्रिय वही होता है, पवित्र वही होता है, जिस राजा के राष्ट्र में कोई एक दूसरे का ऋणी न हो। अब ऋण मुनिवरों! यहाँ कई प्रकार के माने हैं। एक ऋण तो वह कहलाता है जिसको हमारे यहाँ पितर-ऋण कहते हैं क्योंकि पितरों की सेवा करना, पितरों को ऊँचा बनाना यह पितर याग कहलाता है। यह मानो नाना प्रकार की आभा में मानव रमण करता रहता है। परन्तु पितरों को नहीं विचार पाता क्योंकि सबसे महान जो हमारा पितर है, वह हमारा चैतन्य देव है। जो नाना प्रकार की वस्तुओं को प्रदान करता रहता है। जीवन को सुसज्जित बनाता रहता है। तो भगवान राम कहते हैं हमारे राष्ट्र में कोई एक दूसरे का ऋणी नहीं होना चाहिए। प्रत्येक मानव उऋण होना चाहिए जिससे हम अपना कार्य सुचारू रूप से कर सकें और प्रजा को सुखद बना सकें। ऐसा मुनिवरों! भगवान राम ने यह कहा। उच्चारण करने के पश्चात ब्रह्मचारी भी मौन रहते और यज्ञशाला में जो मन्त्रीगण थे वह मौन थे। अपना विचार प्रारम्भ हो रहा था। राम कहते थे कि मानव का जीवन त्यागमयी होना चाहिए। जब तक त्यागमयी जीवन नहीं होगा तब तक मानव का जीवन किसी काल में भी ऊँचा नहीं बनता। किसी भी काल में महान नहीं बनता और जीवन त्यागमयी और याज्ञिक होना चाहिए।

मेरे पुत्रों! याग के सम्बन्ध में यह चर्चाएं हो रही थीं। भगवान राम ने यह दृष्टिपात किया कि ऋषि भी विद्यमान हैं। यह भी पूज्य होते हैं। मुनिवरों! अपने विचारों को शान्त करके यही उन्होंने अपना विचार दिया कि सब प्रजा अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करें। एक दूसरे का मानव ऋणी रह ही नहीं सकता। ऋणी उस काल में रहता है जब मानव नाना प्रकार की विडम्बना में युक्त होता है। नाना प्रकार की विडम्बना वाला जो मनवृत कहलाता है, वह इस संसार को, गृह को या राष्ट्र को स्वर्ग नहीं बना सकता। स्वर्ग वहीं प्राणी ला सकता है, जिसका चारित्रिक निर्माण हो। महान और पवित्र हो। वही मानव मुनिवरों! साधना के क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है। हमारे यहाँ याग के सम्बन्ध में नाना प्रकार की आभाएं, नाना ब्रह्मवेत्ता आए, उनका सर्वत्र एक मन्तव्य रहा है कि संसार को ऊँचा बनाने

के लिए महान विचारों की आवश्यकता रहती है। पवित्रता की आवश्यकता रहती है। तो इसीलिए वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है। आज हम अपने मानव जीवन को यागमय बनाना चाहते हैं। तो वैश्मपायण इत्यादि विद्यमान थे। राम ने अपना उपदेश समाप्त किया। राम ऋषियों के चरणों को स्पर्श करके बोले, कहो भगवन! आज प्रातःकालीन मेरे आश्रम में आपका आगमन कैसे हुआ? महर्षि विभाण्डक मुनि बोले कि महाराज! हम इसलिए आए हैं कि तुम्हारे राष्ट्र में एक याग होना चाहिए। हम एक याग की कल्पना करके आए हैं। संकल्पवादी बन कर आए हैं कि राम के द्वारा एक याग हो सकता है। राम बोले बहुत प्रिय, यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है, तो याग की रचना करो। याग होना चाहिए।

मेरे पुत्रो! उस समय राम का आदेश पाते ही नाना ब्रह्मचारी, नाना ऋषिवर, ब्राह्मण समाज याग के रचाने के लिए नाना सामग्री एकत्रित करने लगे। जब नाना सामग्री एकत्रित हो गईं। तो वह याग के लिए अपने आसन से प्रस्थान करने लगे। मेरे प्यारे! याग प्रारम्भ हो रहा है। याग में नाना ऋषिवर विद्यमान हैं। महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज की अध्यक्षता में बेटा! वह याग हुआ। वशिष्ठ मुनि महाराज उस याग के पुरोहित बनें। अध्वर्यु, उद्गाता देखो, नाना अपने आसनों को अपनाते हुए, जब याग का प्रारम्भ होने चला। प्रारम्भ होने के पश्चात भगवान राम मौन हो गए। यज्ञमान की सूक्ष्मता थी इतने में महर्षि वाल्मीकि मुनि महाराज माता सीता के सहित भ्रमण करते यज्ञशाला में आ पहुंचे। क्योंकि हमारे यहाँ रघुवंश की परम्परागतों से एक नियमावली बनी हुई थी कि जो भी सन्तान कन्या के, राज लक्ष्मियों के यहाँ जन्म लेती उनका विद्यालयों में, आयुर्वेदाचार्यों के गृहों में उनकी पालना होती थी। मुझे वह काल स्मरण है मुनिवरों! जब सीता महर्षि बाल्मीकि आश्रम में जो जहाँ ब्रह्मवेत्ता थे वह आयुर्वेद के मर्म को जानने वाला था। मेरे प्यारे! सीता का वहाँ पर्दापण हुआ और पर्दापण होने के पश्चात ब्रह्मवृत देवः यज्ञ एक महान कर्म तो होता है, विचित्र कार्य तो होता है, परन्तु महर्षि बाल्मीकि भी सीता के सहित यज्ञ में आ पधारे और याग होने लगा।

जब याग प्रारम्भ होने लगा तो देवता प्रसन्न होने लगे। क्योंकि देवताओं को सबसे प्रथम आह्वान किया जाता है। स्वस्ति के द्वारा आह्वान करता है। मानव अपने अन्तःकरण से आह्वान करके कहता है आओ देवताओ! तुम देव पूजा करते हुए देववत् को प्राप्त हो जाओ। ऐसा वह उच्चारण कर रहे थे। आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा प्रकट तुम्हें करने नहीं आया हूँ। केवल यागों का परिचय देने के लिए आया हूँ। मेरे पुत्र! देखो, जब महर्षि बाल्मीकि भी विद्यमान हो गए। और याग प्रारम्भ का वेदमन्त्र जब उन्होंने उच्चारण किया। द्वितीय किया। तृतीय किया। इसी प्रकार छटा मन्त्र जब उच्चारण किया तो राम कहते हैं कि यहीं याग को शान्त कर दो। उन्होंने कहा क्यों महाराज? ऋषियों से कहा राम ने कि महाराज! वेदमन्त्र यह कहता है कि यह जो यज्ञशाला है, यह महापुरुषों का विमान कहलाता है, और इस विमान पर विद्यमान हो कर जब याग करता है, तो वह देवतत्व को प्राप्त होता है। परन्तु जब यह नाना प्रकार की उपाधियां प्रदान की जाने लगी तो मेरे पुत्रो! देखो, वह ब्रह्मवृत देवः वह शान्त हो गए और कहा कि मुझे यह निर्णय करो कि यज्ञमान का विमान अन्तरिक्ष में कैसे जाता है? वह कैसे बनता है? हम यह जानना चाहते हैं। मेरे प्यारे! देखो, नाना ब्राह्मण मौन हो गए। क्योंकि ब्राह्मण उस प्रक्रिया को क्रिया से नहीं जानते थे। मेरे प्यारे! जब यज्ञमान ने ऐसा कहा तो नाना ऋषिवर मौन रहे क्योंकि दर्शनों की भाषा में तो वह निर्णय दे सकते थे। परन्तु वह चाहते थे कि विज्ञान की महत्ता होनी चाहिए। विज्ञान इस सम्बन्ध में क्या कहता है? तो मेरे प्यारे! देखो, वह शान्त हो गए।

इतने में महर्षि भारद्वाज, ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारिणी शबरी ने यह विचारा कि चलो आज महापुरुष के यहाँ याग हो रहा है। ऐसा मुझे स्मरण है पुत्रो! जब इतने में भारद्वाज का पर्दापण हुआ तो भारद्वाज मुनि महाराज ने दृष्टिपात किया कि सभी शून्य है। यज्ञशाला में प्राणी शून्य हैं। यज्ञमान भी शून्य गति को प्राप्त हो रहा है। उन्होंने

कहा कि महाराज! आप मौन क्यों हैं। राम कहते हैं कि मैंने यह निश्चय किया है, मुझे निर्णय कराओ कि मेरा याग यह ऊँचाहोना चाहिए। याग में सफलता प्राप्त होनी चाहिए। परन्तु मुझे सफलता का कोई आकार प्रतीत नहीं हो रहा। वह बोले कि क्यों? वह बोले कि मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है। स्वतः हो रहा है। परन्तु कोई वाक्य नहीं। मेरा यह प्रतीत मिथ्या भी हो सकता है। मेरे प्यारे! देखो, यज्ञम् ब्रह्मेः जब महर्षि भारद्वाज ने ऐसा कहा तो राम कहते हैं, महाराज! मेरी यह कामना है, मेरी यह इच्छा है कि मैं इस यज्ञशाला को यज्ञमान का विमान दृष्टिपात करना चाहता हूँ। यह वाक्य उच्चारण किया और मौन हो गए। परन्तु महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने यह कहा ब्रह्मचारी सुकेता और ब्रह्मचारिणी शवरी को आदेश दिया और वह भ्रमण करते अपने आश्रम में आए। नाना प्रकार के यन्त्रों को स्थिर करके मेरे पुत्रो! वहाँ से उन्होंने गमन किया। और अयोध्या में आ गए, जहाँ राम यज्ञशाला में यज्ञमान की उपाधि से सुशोभित हो रहे थे। उद्गाता उदगान गा रहा है। अध्वर्यु अपनी स्वर ध्वनि में प्रवेश कर रहा है। मेरे प्यारे! भिन्न-भिन्न विचारधाराएं मानव के मस्तिष्कों में क्या संसार इसके सम्बन्ध में विचारता रहता है और चिन्तन करता रहता है कि हमारा जीवन कैसे महान और पवित्रता को प्राप्त कर सकता है। यज्ञम् ब्रह्मे! ऋषि ने कहा कि राम! तुम याग करो अब। राम मुनिवरों! ज्योंहि यज्ञशाला में आहुति देने लगे त्यों ही इतने में ब्रह्मचारियों ने नाना प्रकार के तन्तुओं को कटिबद्ध कर दिया और याग उन्हें दृष्टिपात आने लगा। मानो उनकी विज्ञाशाला में जो नाना प्रकार के यंत्र विद्यमान थे। उन यंत्रों में यह विशेषता थी कि शब्द के साथ में जो चित्र जाता है, वह कहाँ जाता है? किस गति को प्राप्त होता है? वह उन यंत्रों में स्वतः दृष्टिपात होता था। तो मेरे प्यारे! महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने नाना प्रकार के यंत्रों में राम का, सीता का चित्र नाना अध्वर्यु, उद्गाता जो भी स्वाहाः कहता था उसका चित्र बन करके द्यौ-लोक को राम को दृष्टिपात होने लगा। मेरे प्यारे! उस समय भारद्वाज मुनि कहते हैं, हे राजन्! यह हमने विज्ञान को तुम्हें कुछ दृष्टिपात कराया है। नाना प्रकार का विज्ञान मानव के मस्तिष्क में रहता है। विचारों में रहता है।

आज का हमारा वेद का ऋषि तो यही कहता है कि हे मानव! तू अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके अपने कार्य-कलापों में तुम्हें परिणत रहना चाहिए। तो मेरे प्यारे! देखो, यह नाना प्रकार के यंत्र चित्रावली में दृष्टिपात आने लगे तो राम कौन हो गए। महर्षि भारद्वाज मुनि कहते हैं, राम! यह तुम्हें ज्ञान होना चाहिए। यह तुम्हें प्रतीत रहना चाहिए। कोई भी मानव इतनी आभा में, इतनी वृत्तियों में रमण नहीं करना चाहिए। परन्तु उसमें शनै-शनै जीवन को ऊँचा ले जाना चाहिए। परन्तु जब ऐसा वाक्य उन्होंने प्रकट किया तो वह बोले महाराज! हम आपके वाक्यों को स्वीकार नहीं करेंगे। क्योंकि नाना प्रकार की जो कृति हैं, नाना प्रकार की जो भाषिताएं हैं यही तो मानव को एक सूत्र में ला देती हैं। एक ही सूत्र में मानव को पिरो देती हैं। ऋषि की विज्ञानशाला में यंत्रों में नाना प्रकार के चित्र दृष्टिपात होते थे।

परन्तु उन दृष्टियों में आज हम जाना नहीं चाहते हैं। विचार यह देने के लिए आए हैं कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन को यागमय बनाना चाहिए। राम का जीवन जब मुझे स्मरण आने लगता है मेरे प्यारे! अन्तरिक्ष में जब तारा मण्डल अपने प्रकाश में रहते हैं, उस समय राम अपने आसन को त्याग देते और आसन को त्याग करके वह नाना अपनी क्रियाकलापों से निवृत्त होकर के उस के पश्चात मुनिवरों! कुछ उपदेश होता, चिन्तन होता, मानो वह प्रत्येक इन्द्रिय को तपाते रहते थे। अध्ययन करते रहते। तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या? कि वह सर्वत्र? क्या है? जो मानव इतने कार्य कर रहा है। परन्तु वह क्या वस्तुतः है, जो ऋषियों ने बेटा! अपना मन्तव्य प्रकट किया। अपना-अपना वाक्य प्रकट किया हे राम! अब तुम्हारा यह जो याग है, यह पवित्र है। परन्तु तुम्हारे यह इच्छा है कि मैं राष्ट्र को, ब्रह्माण्ड को जानना चाहता हूँ, तो वह जाना जा सकता है। वह जाना कैसे जाएगा? जब तक मानव के जीवन में सार्थकता का जन्म नहीं होगा। मानवता का व्यवहार नहीं होगा तब तक मानव का जीवन

कदापि भी सुन्दर नहीं बन पाएगा। मेरे प्यारे! प्रत्येक मानव का जीवन यागमय रहना चाहिए। यज्ञशाला में नाना प्रकार के यागों से मानव के जीवन की आभा उत्पन्न होगी। उसकी पवित्रता उसके आसन को ग्रहण कर जाएगी। परन्तु देखो, विचार क्या है? मेरे पुत्रो! देखो, प्रत्येक मानव प्रत्येक देवकन्या को अपना विचार विनिमय करना है। अपने देव की आराधना करनी है। जो सर्वत्र जगत का उपास्य देव है। जो मानव को उपदेश देता है। कि मानव का जीवन यज्ञमयी होना चाहिए। क्योंकि यज्ञ ही मानव के जीवन को ऊँचा बना देता है।

मेरे प्यारे! उस देव पूजा में दो प्रकार के साकल्यों को दृष्टिपात कर लेना चाहिए, जिससे मानव के द्वारा नाना साकल्य बन करके मानव के जीवन की सार्थकता का प्रतीत होता रहे। तो विचार विनिमय क्या कि प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या को बेटा! संसार में आ करके अपने मानवीय जीवन को पवित्र बनाना है, मानवीय जीवन को ऊँचा बनाना है, यागमयी ले जाना है। मेरे पुत्रो! एक मानव वैज्ञानिक बनना चाहता है, परन्तु वह विज्ञान के युग में प्रवेश करता हुआ वह भी इसी प्रकार की माला को निर्धारित कर देता है। उसी माला को मानव जब धारण कर लेता है, तो अमरावती को प्राप्त हो जाता है। तो आओ मेरे प्यारे! देखो, राम का याग लगभग छह माह तक प्रारम्भ रहा। तो महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने उन्हें नाना प्रकार के चित्रों में उनकी आभा दृष्टिपात आ रही थी। आओ मेरे प्यारे! आज का विचार विनिमय क्या? मैं विशेष चर्चा तुम्हें देने नहीं आया हूँ, मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ। परन्तु संक्षिप्त परिचय देने आता हूँ। परिचय देना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। तो आओ मेरे प्यारे! आज का हमारा विचार क्या कह रहा था? वैश्मपायन ऋषियों ने विभाण्डक इत्यादियों ने इस प्रकार के क्रिया-कलापों को दृष्टिपात किया तो उन्होंने कहा धन्य है, भगवन्! धन्य-धन्य में ही आभायित हो गए। आभायित हो कर ही मानव अपने जीवन की आभा को प्राप्त करता रहता है।

आओ मेरे प्यारे! देखो, आज का हमारा यह विचार क्या कह रहा है? मानव के शब्दों का चित्र, जिस प्रकार का जिस आकार की वह यज्ञशाला है, उसी प्रकार का विमान बन करके बेटा! चित्रशाला में मुनिवरों! वह शब्द के साथ में साकल्य के साथ में द्यौ लोक को जाता हुआ, उन्हें दृष्टिपात हो रहा था यथार्थ में तो विचार विनिमय क्या? मुनिवरों! प्रत्येक मानव वैज्ञानिकता में प्रवेश करना चाहता है कि विज्ञान भी हमारा जन्मसिद्ध अधिकार कहलाया गया है। क्योंकि नाना प्रकार के प्राणी आते हैं, तो नाना प्रकार की आभा उनके मस्तिष्कों में निहित रहती है। नाना प्रकार की आभा वाले जो प्राणी हैं। वह अपने जीवन को यज्ञ में ही परिणत कर देते हैं। यज्ञ में ही ओत-प्रोत हो जाते हैं।

मुनिवरों! देखो, यज्ञ एक महान कार्य है। उनमें किसी प्रकार की विडम्बना नहीं है। वह विडम्बना से रहित कहलाता है। परन्तु नाना प्रकार की आभा वाला मानव भी विडम्बनित होता रहता है। इसीलिए विडम्बना मानव के हृदय में नहीं होनी चाहिए। हे मानव! तू अपने जीवन की यज्ञमयी बना। देवताओं के समीप ले चल और देवता जब तुझे अपना लेंगे तो तेरी आयु दीर्घ होगी। दीर्घायु वाला बन। क्योंकि दीर्घायु वाला जो प्राणी है, वह मेरे प्यारे! मानव के जीवन को एक अभ्यस्त कराता हुआ मनस्तव, प्राणस्तव दोनों को एक सूत्र में ला करके बेटा! साधना के क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है।

मेरे प्यारे! कौन मानव साधक होता है? साधक वही कहलाता है, जिस मानव का जीवन यज्ञ में प्रवेश कर गया है। यज्ञमयी बन गया है। वही मानव मेरे प्यारे! याज्ञिक कहलाता है। वह देवतव को प्राप्त होता है। मेरे पुत्रो! आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज का विचार विनिमय क्या है? आज का विचार यह कहता है कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन को यज्ञमय बनाना है। त्रुटियों को दृष्टिपात नहीं करना है। त्रुटियों से उपराम होने का प्रयास करना है। जिससे मुनिवरों! मानव तृतीय आभा को अपनाकर के मानवीय जीवन को सुसज्जित बनाता हुआ, पवित्र बनाता हुआ इस सागर से पाकर हो जाता है। आओ मेरे पुत्रो! मैं केवल वाक्य यह

प्रकट करने आया हूँ कि प्रत्येक मानव को अपने मानवीय जीवन को यज्ञमयी बनाना है। ब्रह्मचरिष्यामि मेरे प्यारे! एक मानव याज्ञिक बन रहा है, जो मानव अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा कर रहा है। ब्रह्मचारी बन करके मुनिवरों! ब्रह्मचरिष्यामि वह मानव यज्ञशाला में विराजमान हो करके चरि की रक्षा, चरि को विचार रहा है। चरि किसे कहते हैं? बेटा! चरि तो वास्तव में जितना भी प्रभु का ज्ञान है, वेद का मन्त्र, जितना भी ज्ञान और दर्शन है, वह सर्वत्र चरि कहलाती है। जिस चरि की रक्षा करने वाला मानव सागर से पार होता है। हमारे याज्ञिक पुरुषों ने कहा है, यज्ञवेत्ताओं ने कहा है कि जैसे यज्ञ एक स्थली कहलाता है, इसी प्रकार समुद्र की मेखला बनी हुई है, पृथ्वी के आँगन में वह भी संचार है। वह चलन संचारित होता रहता है, जिससे पृथ्वी के विष को समुद्र अपने में धारण करता रहता है। इसी प्रकार हे मानव! तेरा जीवन भी पवित्र होना चाहिए। जीवन में तरंगें होनी चाहिएं। जिन तरंगों को अपना करके हम इस संसार सागर से पार हो जाएं। हम चरि को चरने वाले बनें।

बेटा! चरि किसे कहते हैं? ब्रह्मवेत्ता भी चरि की रक्षा करते हैं। जो ब्रह्मवेत्ता कौन? मुनिवरों! ब्रह्मवेत्ता वह कहलाता हैं जो ब्रह्म की उड़ान उड़ने वाले हों। ब्रह्मवेत्ता वह कहलाता हैं जो ब्रह्मचारी हों। ब्रह्मचारी वह कहलाते हैं जो चरि की रक्षा करने वाले हों। चरि की वह रक्षा करते हैं, जो मेरे प्यारे! अपने जीवन को यज्ञ में परिणत कर लेते हैं। तो परिणाम क्या है? प्रत्येक मानव यज्ञ में प्रवेश करना चाहता है। याज्ञिक बनना चाहता है उस यज्ञ में वह प्रवेश हो रहा है। मुनिवरों! आज का हमारा वेद का मन्त्र वेद का उपदेश क्या कह रहा है? वेद का वाक्य यही कहता है हे मानव! तू जीवन को ऊँचाले चल। जीवन को मुधमयी बना। उस प्रभु को माता स्वीकार करके उसकी लोरियों को पान करने लगोगे तो मधु-मधु बन करके तुम्हें मधु में परिणत करा देती है। मधु नाम बेटा! ज्ञान को कहा गया है। मधु हमारे यहाँ विज्ञान को भी कहा गया है। हमारे यहाँ मधु को सोम कहते हैं मधु भी कहते हैं जब योगीजन बेटा! साधना में प्रवेश करते हैं और साधना में प्रवेश करके जब वह प्राणों का निरोध करता है, प्राण और अपान दोनों का निरोध करता है, निरोध करता हुआ मेरे प्यारे! मनस्तव प्राणस्तव को एक सूत्र में लाता है। मन और प्राण जब एक सूत्र में आते हैं इन दोनों का समन्वय होना प्रारम्भ हो जाता है तो मुनिवरों! यह जो आत्मा है, यह प्राण को अपना आश्रम बना करके, मन को अपना आश्रय बना करके यह मूलाधार से गति करता है, मानो नाभि चक्र में आता है। हृदय में आता है, कण्ठ चक्र को होता हुआ वह मुनिवरों! स्वादिष्टान चक्र में रमण करता हुआ ब्रह्मरन्ध्र में गति करता है। ब्रह्मरन्ध्र में मुनिवरों! देखो, त्रिवेणी में और ब्रह्मरन्ध्र में अब गति करता है। ब्रह्मरन्ध्र ऊर्ध्वा गति से जब गति करना प्रारम्भ करता है। जब प्राणों की धुक धुकी लगती है, आत्मा का ज्ञान उसमें विकसित होता है तो मुनिवरों! ब्रह्मरन्ध्र गति से गति करना प्रारम्भ कर देता है तो उसमें से ऐसा कहते हैं योगीजन कि उस ऊपर ले स्थान में एक पिपाद स्थान कहलाता है। इस पिपाद स्थान से बेटा! वह रस जिसे मधु-मधु कहते हैं उनकी एक-एक कृणिणा प्राप्त होने लगती है। मेरे प्यारे! वह ब्रह्मरन्ध्र में जब गति करती है, तो परमाणु बेटा! आभा में गति करते हैं तो स्वादिष्ट जो चक्र है उन परमाणुओं से आभायित हो करके ब्रह्मरन्ध्र में ऊर्ध्वा गति को प्राप्त होता है। हमारे यहाँ ऋषि-मुनियों ने बहुत पुरुषार्थ किया। उन्होंने अनुसन्धान किया। यह कहा कि प्राण और अपान दोनों का निधान करना जो जानता है, समान का निधान करना जानता है, व्यान का जानता है, उदान का जानता है, इन पांचों प्राणों को जो एक सूत्र में लाना जानता है और वह मेरे प्यारे! जितना भी यह संसार प्राण रूपी सूत्र में पिरोया हुआ है, चेतना में पिरोया हुआ है योगी बेटा! उसका साक्षात्कार करने लगता है। क्योंकि योगी ही उसे कहते है। जो मेरे प्यारे! जितना भी यह बाहरीय जगत, आन्तरिक जगत जो एक ही सूत्र में पिरोया हुआ है, उस सूत्र को जान जाए उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड का उसे मेरे प्यारे! बोध हो जाता है, ज्ञान हो जाता है, वह सोम रस को पान करने लगता है।

मेरे प्यारे! आज मैं योग के क्षेत्र में, साधना के क्षेत्र में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय क्या

है? मेरे प्यारे! देखो, मानव के द्वारा कुछ मनके हैं और वह मनके एक सूत्र में पिरोना चाहता है। मेरे प्यारे! वह कौन से मनके हैं? मानव को जो श्वास प्रश्वास आते हैं, वह एक मनके कहलाते हैं। ओ३म् रूपी सूत्र में बेटा! इन मनकों को पिरोना है। यदि उन मनको वह ओ३म् रूपी सूत्र में पिरो देता है तो मुनिवरों! प्रत्येक श्वास-प्रश्वास ओ३म् रूपी क्षेत्र में जब प्रवेश कर जाते हैं तो वह योगी बेटा! ब्रह्म की चरि को चरने लगता है। और वह जब ब्रह्म की चरि को चरने लगता है, उसकी उरुर्ध्वा मति हो जाती है। ऊर्वा गति बन करके बेटा! वह सर्वत्र ब्रह्माण्ड को साक्षात्कार करने लगता है। तो विचार विनिमय क्या? मेरे प्यारे! ऋषि मुनि सदैव क्या चाहते हैं कि ब्रह्माण्ड को इस पिण्ड में ही दृष्टिपात करना चाहते हैं। क्योंकि उन्होंने अपनी अनुसन्धान की लेखनियां बद्ध की हैं। लेखनियां बद्ध करके उन्होंने सुन्दर-सुन्दर विचार दिए हैं। तो विचार विनिमय क्या? मेरे प्यारे! देखो! प्रत्येक मानव को अपने जीवन को याग में ले जाना चाहिए। जैसे मानव अग्न्याधान करके, उद्बुद्ध स्वाहाः कह करके जब वह अग्नि को प्रदीप्ति करता है, इसी प्रकार हे मानव! जैसे तू बाहरीय अग्नि को जागरूक करता है। इसी प्रकार तेरी जो आन्तरिक अग्नि है, जो आभा में प्रकट हो रही है तो उस को जागरूक बना। उस अग्नि को जब तू जागरूक बनाएगा। उद्बुद्ध स्वाहाः कह करके जब तू उसे चेताने के लिए तत्पर होगा। वह अग्नि जहाँ चेती, उस अग्नि के चेतने के पश्चात सर्वभोम जो अग्नि है और आन्तरिक अग्नि दोनों का तारतम्य लग जाएगा! मेरे प्यारे! तेरा जीवन अग्निमय क्या यज्ञमय हो जाएगा। वह यज्ञ का प्रवेश है यज्ञमयी जीवन को बनाना बेटा!।

सृष्टि के प्रारम्भ में जब मेरे प्यारे प्रभु ने यह संसार रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया बेटा! इसमें प्रत्येक याग का अभिप्राय क्या है? जैसे यज्ञशाला में से सुगन्धि उत्पन्न होती है और वह सुगन्धि मानो प्रत्येक प्राणी के लिए होती है। प्रत्येक वनस्पति के लिए होती है। इसी प्रकार मेरे प्यारे प्रभु ने जब यह संसार रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया तो मेरे प्यारे! यज्ञशाला का निर्माणवेत्ता कौन? मेरा प्यारा प्रभु है। परन्तु देखो! उस समय आत्मा यज्ञमान बनता है और मुनिवरों! यह जो पंचीकरण तत्त्व हैं, पांच तत्त्व है। मानो यह पंच महाभूत बेटा! देखो, कोई उद्गाता बनता है, कोई ऊदुर्यु बनता है, कोई मानो देखो, ध्वनि कर रहा है। यह जो नाना देखो! परमात्मा ने संसार रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया है, उसका यह आत्मा यज्ञमान बना हुआ है। आत्मा जब यज्ञमान बन करके इस यज्ञशाला में विद्यमान हो करके ब्रह्म की चरि को चरने लगता है, चिन्तन करता रहता है। मेरे प्यारे! अपने को ओ३म् रूपी क्षेत्र में ब्रह्म चेतना में पिरो देता है तो यह बेटा! उसका व्यापक एक याग बन जाता है।

तो आओ मेरे प्यारे! देखो, हम बाहरीय और आन्तरिक दोनों यागों का समन्वय करना चाहते हैं जब उनका मिलान हो जाता है। उसकी आभा में रमण करता रहता है तो मानव के जीवन में एक सुन्दरता छा जाती है। विचारने लगता है हे मानव! तू अपने जीवन में रुग्ण भी नहीं रहेगा। जब तू प्राणों का विरोध करेगा। जो मानव संसार में बेटा! ओ३म् रूपी क्षेत्र में इस अपने प्राणरूपी मनके को पिरोने लगता है, तो बेटा! उसके जीवन में रुग्ण भी नहीं रहेगा। उनके शरीरों में रुग्ण भी नहीं रहते। वह रुग्ण भी दूर चले जाते हैं। परन्तु देखो, ब्रह्म के आँगन को जो अग्नि चेत रही है उस अग्नि को अपने में धारण करना ही मानव का जीवन कहलाया गया है। तो बेटा! हमारा यह विचार विनिमय हो रहा था कुछ संक्षिप्त परिचय दे रहा था। यज्ञ के सम्बन्ध में तो महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने राम की उस यज्ञशाला में महर्षि वैश्मपायण इत्यादियों को जब यह निर्णय कराया तो भारद्वाज मुनि महाराज आध्यात्मिक वेत्ता भी उतने ही थे। आध्यात्मिक उपदेश भी देते थे। और मुनिवरों! जब कोई भी मानव आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करना चाहता है। यौगकता में कोई भी मानव जाए तो आध्यात्मिकवाद के मार्ग में भौतिकवाद के मार्ग से हो करके ही प्रवेश करता है। इसीलिए भौतिकवाद को जानना और जानकर मेरे प्यारे! आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करना, उसको जानना, यह सर्वभोग एक याग कहलाता है बेटा! आओ मेरे प्यारे! इसीलिए वेद के ऋषि यही कहते हैं, हे मानव! तू अपने जीवन को यागमयी बना। तू नाना प्रकार की चित्रावलियों

का दर्शन कर। उन चित्रावलियों का दर्शन करके अपने आन्तरिक जगत में उन नाना प्रकार के चित्रों का दर्शन कर। इस ब्रह्माण्ड को तू अपने में धारण करता हुआ तू इसको जानता हुआ बेटा! इस संसार सागर से पार हो जाता है।

आओ, मेरे प्यारे! आज का हमारा विचार क्या? कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए अपने याग को ऊँचाबनाते रहें। भौतिक विज्ञान, आध्यात्मिक विज्ञान में जो मानव अपने में प्रकाश को स्वीकार कर लेता है तो बेटा! उस मानव की मृत्यु भी नहीं होती। वह मानव मृत्यु से पार हो जाता है। क्योंकि प्रकाश का नाम जीवन है और अन्धकार का नाम मृत्यु कहलाता है। तो इसीलिए बेटा! प्रत्येक मानव को अन्धकार को त्यागना है और प्रकाश को लाना है। और वह प्रकाश बिना ज्ञान और विवेक के मानव को उत्पन्न नहीं होता। आओ, मेरे प्यारे! यह आज का हमारा वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए अपने प्रत्येक श्वास को, मनकों को बेटा! हम एक सूत्र में पिरोते चले जाएं और मुनिवरों! अपने जीवन को यज्ञमयी बनाते चले जाएं। क्योंकि यज्ञमयी जीवन मानव को ऊँचाबनाता है। यह आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन होगा। इसके पश्चात वह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी।

५ महात्मा दधीचि का जीवन २१ ११ १९८१

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहां परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव, परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र, उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है। जिस प्रकार माता का पुत्र माता की गाथा गाता ही रहता है, जैसे पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गाती रहती है, इसी प्रकार प्रत्येक वेदमन्त्र, उस परमपिता परमात्मा की गाथा गाता रहता है, क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र में, उस ब्रह्ममयी स्वरूप का वर्णन आता रहता है। जिस मेरे देव ने, इस ब्रह्माण्ड की रचना की, जो नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों वाला जगत बेटा! हमें दृष्टिपात हो रहा है। हम एक नही, द्वितीय नही अनन्तता में रमण करती हैं, परन्तु उस अनन्तता में, प्रभु का दिग्दर्शन होता है। कोई वस्तु ऐसी नही है, जिस वस्तु के गर्भ में, उस परमपिता परमात्मा की आभा न हो, प्रत्येक श्वास गति कर रहा है, वह जैसे मानव के शरीर में गति कर रहा है, इसी प्रकार वह ब्रह्माण्ड में, अन्तरिक्ष में बेटा! गति कर रहा है। क्योंकि चित्रण होता रहता है। प्रत्येक शब्द के साथ चित्रण होता रहता है प्रत्येक श्वास के साथ चित्रण होता रहता है। मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विज्ञान में ले जाना नही चाहता हूं, आज मैं तुम्हें उस आभा में वर्णन कराने के लिए आया हूं, जहां ऋषि मुनि विद्यमान हो करके, बेटा! अपनी उडान उडते रहे हैं, जहां गुरु शिष्य का दोनों का समन्वय होता रहा है, मुझे मेरे पुत्र ने कल के वाक्यों में, नाना प्रकार की चर्चाएं की हैं, इन्होंने याग के सम्बन्ध में, उसको अहिंसा में परिणत किया है। परन्तु राष्ट्र की चर्चाएं कीं, और कुछ विज्ञानवेत्ताओं के सम्बन्ध अपने विचार धारा प्रकट की। परन्तु जहां हम कर्मकाण्ड की आभाओं में परिणत होते हैं। तो संसार के किसी भी कर्मकाण्ड में, हिंसा का प्रश्न नही उत्पन्न होता एक याग ही नही जितना भी संसार का कल्पात्मकक कर्म है उस कोई से भी कर्म में बेटा! हिंसा उत्पन्न नहीं होती।

मुझे स्मरण आता रहता है एक समय श्वेतकेतु मुनि एक समय वह मंगल मण्डल से आए और मंगल से एक क्योंकि मंगल में कई माह तक उन्होंने उस लोक में ग्रहण किया और वह इस पृथ्वी मण्डल पर आए तो वह गाडीवान रेवक के समीप जा पंहुचें, गाडीवान रेवक मुनि गुरु थे, गाडीवान रेवक ने कहा कहो ऋषिवर! आप मंगल

से आये वहां के वायुमण्डल की आभा प्रगट करो। तो ऋषि कहता है, क्या मंगल मण्डल में यागां ब्रह्मणा देवसुतम् मानो वहां याग होता है, अहिंसा में रमण करने वाला प्राणी, मेरे पुत्रों वहां अहिंसा की आभा, मानवीय क्षेत्र में रमण करती रही है, एक मण्डल नहीं, नाना प्रकार के मण्डलों की विवेचना आती रहती है। तो जहां लोक लोकान्तरों में, कर्मकाण्ड का प्रसंग आता रहता है, वहां इस पृथ्वी मण्डल पर भी है। मानव समाज का सर्वांग कहलाता है। जैसे नाना प्राणी और भी वसन करते रहते हैं तो मानव योनि एक ऐसी योनि है जो सर्वांग हैं। जैसे दसों इन्द्रियों का वर्णन वैदिक साहित्य में प्राप्त होता रहता है, और वह वैदिक साहित्य हमें मानव जीवन में दसों इन्द्रियों का वर्णन वर्णित होता रहा है, तो मेरे पुत्रों! ये जो सर्वांग प्राणी है ये नाना प्रकार की उडान उडता रहता है, चाहे पृथ्वी मण्डल पर रहो, चाहे वह मंगल में रहता हो चाहे, वह बुध में रहता हो किसी भी लोक का प्राणी क्यों न हो परन्तु क्योंकि ये सर्वांग है। इसीलिए मुनिवरों! ये अहिंसा परमोधर्म को जानता है। ये इसके गर्भ में ओत प्रोत होता रहा है, तो जब रेवक मुनि ने उनसे ये कहा, क्या हे पुत्र! तुम मंगल में पंहुचें, तो उनसे कुछ वार्ता हुई? तो वेद का ऋषि कहता है, कि वहां प्राणी हमारे पृथ्वी मण्डल जैसे ही प्राणी गमन करते हैं परन्तु वहां यागशालाए भी हैं, पूजाएं भी होती रहती हैं, विज्ञान यहां से सहस्त्रों वर्ष अग्रणीय विज्ञान माना गया है। मेरे प्यारे! ये ऋषि के ही नहीं ये, महाभारत के काल में महाराजा अर्जुन ने भी ये वाक् प्रगट करवाया। है तो मेरे प्यारे! मैं लोक लोकान्तरों में चला गया हूं, मैं इनमें जाने के लिए तो नही आया था, केवल विचार की, वेद का मन्त्र क्या कहता है? सर्वाणि ब्रह्मणा मंगल व्रते देवाः असतमम् वृतास्ते रुद्राणिः रुद्राः वेद का ऋषि कहता है, कि हे प्राणी! तू मंगल में ही नही जा सकता, तू नाना लोकों में सूर्य मण्डल और देखो, शनि में भी गति कर सकता है। परन्तु एक एक शनि ऐसा है, क्या मुनिवरों! जिस एक शनि को लगभग बहत्तर सूर्य बेटा! एक शनि मण्डल को प्रकाश देते हैं। तो इतना विशाल विज्ञान, प्रभु के राष्ट्र में और यह प्रभु में ही जगत माना गया है। तो कोई वस्तु ऐसी हमें दृष्टिपात नही आती है, जहां प्रभु की प्रतिभा न हो जैसे मैंने अभी अभी उच्चारण किया माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है, क्योंकि उस माता का वह पुत्र वर्णन कर रहा है, जिसका वह बाल्य शिशु है, क्योंकि वह शिशु माता का वर्णन कर रहा है। परन्तु वह महान बन जाता है, तो माता की गाथा गा रहा है, प्रत्येक मानव कह रहा है कि माता का पुत्र है। माता का पुत्र ही ब्रह्म, मानो वह पुत्र हृदयग्राही बन गया है। तो वह माता की गाथा गा रहा है, जैसे मुनिवरों! यह पृथ्वी है ये ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है, जिस प्रकार नाना लोक लोकान्तर बेटा! प्रभु की गाथा गा रहा है। माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है। इसी प्रकार मुनिवरों! देखों यह पृथ्वी जो वसुन्धरा है, ये उस ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है। जो ब्रह्माण्ड रचित हो रहा है।

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है किसी किसी काल में बेटा! साधना की गई थी। जब पृथ्वी के गर्भ में योगी, अपनी श्रुतियों को ले जाता है, तो योगास्थली में वर्णित हो करके बेटा! पृथ्वी के गर्भ में योगी प्रवेश कर जाता है। और योगी इस पृथ्वी के गर्भ में जितना खाद्य और खनिज पदार्थ है वह इस प्रकार गति कर रहा है, मेरे प्यारे! उसको साक्षात्कार दृष्टिपात करता है। मुझे बेटा! स्मरण आता रहता है भारद्वाज मुनि महाराज, एक समय वह साधना कक्ष में चले गए, अपने विज्ञान वह मानो देखो वह प्रतिभाषित अज्ञातवास में परिणत कर गए, और क्यों कर गए? क्योंकि उनके समीप, महर्षि पणपेतु मुनि महाराज की कन्या शबरी थी, जब उनके चरणों में ओत प्रोत होती थी तो वह प्रश्न किया करती थी। क्या हे प्रभु! मैं यह जानना चाहती हूं क्या पृथ्वी के गर्भ में क्या है? तो भारद्वाज मुनि महाराज विज्ञान की वार्ता प्रगट करते थे परन्तु शबरी ने एक समय यह प्रश्न किया क्या महाराज क्या ये तो मैं जानती हूं, विज्ञान तो मैंने अध्ययन किया है परन्तु मैं यह नही जान पाती क्या यौगिक प्रतिक्रिया क्या कहती है, तो मेरे प्यारे! देखो, महर्षि भारद्वाज उस कन्या के प्रश्न करने पर भयंकर वनों में चले गए अज्ञातवास हो गया, मध्यरात्रि में आसन को त्याग दिया, परन्तु एक वर्ष तक इस वाक् को अनुसन्धान और साधना करते रहे,

और जब वह साधना के कक्ष में पंहुचें, पृथ्वी के गर्भ में पंहुचे, तो पृथ्वी के गर्भस्थल में नाना गति करता हुआ परमाणुवाद, अग्नि की तरंगों में दृष्टिपात हो गया जब अग्नि की तरंगों में दृष्टिपात होने लगा परमाणु गतप्रहे तो वहां सूर्य की किरणों ही उसको दृष्टिपात होने लगी। तो सूर्य की किरणे मानो शोधन कर रही थी मानो परमाणुओं का निर्माण कर रही थीं, जल को निर्माणित कर रही थी, जल को शक्तिशाली बना रही थी, मेरे प्यारे! जब ये उनके विचार में आया कि यह तो सूर्य की किरणों निर्माण कर रही हैं, अग्नि द्यौ लोक से आ करके, इस पृथ्वी को गति देती जा रही हैं, वह गति अपने में और मुनिवरों! देखों बाह्य और आन्तरिक अपने में दोनों में ऋषि दृष्टिपात करते रहे। एक वर्ष के पश्चात, वह अपने आश्रम में आए मुनिवरों! देखो, मेरी पुत्री शबरी ने, चरणों को स्पर्श करके कहा, कहिए भगवन! आप अज्ञातवासी हो गए, हम मानो निरसाया हो गए हमारे ऊपर किसी की साया नही रही। परन्तु मेरा वही प्रश्न है प्रभु! एक वर्ष के पश्चात भी उसने वही प्रश्न किया वसुन्धरा के सम्बन्ध में, तो मेरे प्यारे! उन्होंने कहा कि प्रभु! मैं जानना चाहती हूं क्या इस पृथ्वी को वसुन्धरा क्यों कहते है।

तो मुनिवरों! देखो, उन्होंने कहा हे पुत्री! इस पृथ्वी को इसीलिए वसुन्धरा कहते हैं, क्या इसके गर्भ में हम वशीभूत होते हैं, ये संसार इसमें बस रहा है मानो ये संसार जब बस रहा है। तो आभा में गति कर रहा है, प्रत्येक प्राणी परन्तु जब मैं पृथ्वी के गर्भ में योग से दृष्टिपात करता हूं। तो मेरे शरीर में जो पार्थिव तत्व विद्यमान है, जो बाह्य आन्तरिक जगत में गति कर रहा है परमाणु सूर्य की किरणों के साथ साथ गति कर रहा है, वही परमाणु मानो देखो पृथ्वी माता के गर्भस्थल में ओत प्रोत हो रहा है, गति कर रहा है, इससे यह दृष्टिपात होता है, क्या सूर्य की किरणों को एकत्रित किया जाए और उससे वाहनो की गतियां होनी चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है। मानो जैसे सूर्य जल को शक्तिशाली बना रहा है, जल को यन्त्रों को सुयोग्य बना रहा है। परन्तु स्वर्ण का निर्माण किया जा रहा है। तो इससे हमें यह सिद्ध होता है, क्या सूर्य की किरणों, इस पृथ्वी को तपा रही हैं। तपायमान कर रही हैं। जैसे हम माता के गर्भस्थल में, जब विद्यमान थे, तो मानो देखो उस समय सूर्य माता के गर्भ को परिपक्व बना रहा था, उसे तपा रहा था, सूर्य की किरणे उसे आकर्षण शक्ति से स्थिर कर रही थीं। मेरे प्यारे! भारद्वाज मुनि महाराज शारीरिक विज्ञान की चर्चाए करता रहा परन्तु योग की आभा में परिणत होता रहा। तो शबरी ने यहां एक प्रश्न किया, तो ऋषि से कहा कि भगवन! आपको माता के गर्भाशय का कैसे ज्ञान हुआ तो ऋषि कहता है तो हे पुत्री! जब योगेश्वर समाधिष्ट हो जाता है तो उसको माता का गर्भाशय और पृथ्वी का गर्भाशय मानो देखो यह लोक लोकान्तरों के साथ साथ उसके गर्भ में निहित हो जाते हैं, परन्तु उसको वह साक्षात्कार कर लेता है इसी प्रकार माता के गर्भस्थल में जब शिशु होता है। तो योगी उसके गर्भ में प्रवेश कर जाता है और उसके गर्भाशय में शिशु पनप रहा है परन्तु देखो, उसी की प्रवृत्तियों को वह चिन्तन में लाता है।

मुझे स्मरण आता रहता है, जिस समय महर्षि दधीचि की माता शकुन्तकेतु, परन्तु वह भयंकर वनों में विद्यमान थी, और वह तपस्वी थी, तपस्या करती थी, गायत्रणी छन्दों में रमण करती रहती एक समय बहुत काल के पश्चात अपने ऋषि से कहा पति से कहा कि हे प्रभु! मैं पुत्र याग चाहती हूं। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर वरतेन्तु ऋषि थे, जो हरितत गोत्रीय कहलाते थे हरितत गोत्र ऋषि ने कहा क्या हे देवी! अभी इच्छा नही है, हम इस योग्य नही बने हैं, जो हम पुत्र का याग कर सके। परन्तु ऋषि पत्नी मौन हो गई और बारह वर्ष तक मौन धारण कर लिया परन्तु मौन धारण करने के पश्चात गायत्राणी छन्दों का पठन पाठन बारह वर्ष के पश्चात ऋषि व्रत ने कहा क्या हे देवी! आज हम पुत्र याग करेंगें। तो मेरे प्यारे! जब माता के गर्भ में आत्मा का प्रवेश हो गया, तो मुनिवरों! देखो, वायुमण्डल भी उसी प्रकार का बना हुआ था प्रवृत्तियां भी उसी प्रकार की बनी हुई थी तो मुनिवरों देखो जब मानो देखो जब छठा मास माता के शिशु को लगा तो योगी बेटा समाधिष्ट हो करके पर्वतों की कन्दराओं में उस देवी के गर्भ में अपनी प्रवृत्तियों को प्रवेश कराने लगा और मुनिवरों! देखो, प्रवेश में वह शिशु को उसकी प्रवृत्तियों को

अपनी प्रवृत्तियों से मिलान करने लगा, तो ऋषि को यह विश्वास हो गया, यह गर्भाश्यों का मिलान करते थे ऋषिजन जैसे मुनिवरों देखो, जैसे वैद्यराज औषधियों के द्वारा मिलान करता है। परन्तु उसका परीक्षा पालन करता है, परन्तु योगी ध्यानावस्थित हो करके वैसा करता है। मेरे प्यारे मैं कहां चला गया हूं, मैं आज तुम्हे किस गम्भीर रहस्य में ले गया हूं, ये बहुत गम्भीर रहस्य है, जो माता पिता जो मानो योगेश्वर होते है। उनका विषय बन गया।

मुझे स्मरण आता रहा है क्योंकि बहुत से पुत्रेष्टि याग कराने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। परन्तु देखो ऋषिवर दधीचि को माता के गर्भ में ही दृष्टिपात कर रहा है, परन्तु जब माता के गर्भ से तो वहां, के पश्चात माता के गर्भ से बाल्य शिशु बाल्य पृथक् हुआ मानो जब पृथक हुआ तो मुनिवरों! देखो, नामोकरण हुआ, और मुनिवरों! स्वर्ण की आभा में ओ३म् का उच्चारण हुआ, तो मेरे प्यारे वह शिप् शिप् करने लगा, माता अपनी लोरियों का पान कराती, तो दधीचि को शिक्षा दे रही है, त्यागां रुद्रा तस्मै रुद्रो वर्त्ता देवत्यां लोकाः बालक से उच्चारण कर रही है कि हे बालक! हे शिशु! तू मेरी लोरियों का पान कर रहा है, परन्तु महान् यागा, तू यागमय बनना, परन्तु तू मेरी लोरियों का पान कर रहा है, तू लोकों को विजय करने वाला बन। मेरे प्यारे! लोकों में जाने वाला बन, तो मुनिवरों! देखो, माता अपने बालक को त्याग और तपस्या का उपदेश दे रही है, किस अवस्था में दे रही है, लोरियों का पान करा रही है, प्रत्येक वेदमन्त्र को ले करके उसकी व्याख्या मानो कर्मों में प्रवेश करा रही है। माता! तू कैसी माता होगी? कैसी पवित्र माता होगी? जो मानो देखो अपने बालक को ब्रह्मवेत्ता बना देती है, मेरे प्यारे! एक जिज्ञासु बना देती है, तो मुनिवरों! देखो महात्मा दधीचि, मानो देखो शिक्षालय में जाने लगा, जब महात्मा दधीचि शिक्षालय में जाने लगा, बेटा! देखो, महर्षि आरुणिकेतु ऋषि थे उनके आश्रम में वह अध्ययन करते थे मुझे बेटा! किसी काल में उस आरुणिकेतु ऋषि के आश्रम में जाने का भी बेटा! सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मेरे प्यारे! उनकी दिनचर्या, उनका त्याग, उनका तप, कितना विचित्र जो कोई भी अशुद्ध वाक् बेटा! श्रोत्रों में नही आ पाता। मेरे प्यारे देखो, महात्मा दधीचि को पिता ने अपने संरक्षण में महान शिक्षा उसे प्रदान की, और महान शिक्षा देने के पश्चात उसे महानता में परिणत कराया, और महानता में परिणत कराने के पश्चात मेरे पुत्रों देखो, वह पिता शिक्षा देता रहा चौरासी वर्षों तक पिता की आज्ञा का पालन होता रहा। चौरासी वर्षों का ब्रह्मचारी बन गया चौरासी वर्ष का ब्रह्मचारी दधीचि मेरे प्यारे देखो चौरासी वर्ष के पश्चात उसके मनों में एक इच्छा जागी, पिता से उच्चारण करने लगे हे पितरश्चतम् ब्रह्मा! वर्णोति यागाम् ब्रह्म रुद्राः महात्मा दधीचि चौरासी वर्ष के पश्चात बोले अपने पिता से क्या हे पितर! मैं आपके संरक्षण में रहता हूं। परन्तु मैं इस संसार की आभा को भी जानना चाहता हूं, मेरे प्यारे! देखो, उच्चारण करते ही पिता ने कौतुक ऋषि महाराज थे, कौतुक ऋषि महाराज जो मुनिवरों! उद्दालक महर्षि उद्दालक के पडपिता कहलाते थे। कौतुक ऋषि महाराज के द्वारा ऋषि को अभ्यास कराया गया, और उनके द्वारा बेटा! योग की आभा में वर्णित हो गया, और योग के द्वारा ही दधीचि दृष्टिपात करने लगे। जहां दधीचि बेटा! ब्रह्मवेत्ता थे, वहां आयुर्वेद के पारायण थे, जहां आयुर्वेद के परायण थे, वहां मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है, क्या जब महाराजा इन्द्र ने, दधीचि के दैत्यों के लिए वज्र अप्रताम देवाः उन्हे एक शस्त्र बनाना था। दैत्यों को नष्ट करने के लिए तो महात्मा दधीचि उस समय नौ सौ चौरासी वर्ष के थे, और नौ सौ चौरासी वर्ष के महात्मा दधीचि के मुनिवरों देखो उन अस्थियों को इन्द्र ने स्वीकार किया था, और उनके शरीरों के अप्रतां ब्रह्मे उनकी जो अस्थियां थी, वह बेटा देखो दैत्यों को नष्ट करने के लिए, वज्र के आभा में यत्र लिए उन अस्थियों को लिया गया।

तो मेरे प्यारे विचार विनिमय हमारे वाक्यों का क्या है, क्या इस संसार का निर्माण वैसे ही नही होता, बेटा यदि तपस्या साथ नही है तो यह संसार ऊंचा नही बनता यदि तपस्या नही है, तो माता माता नही कहलाती माता को इतना ब्रह्मचर्य वह अपने में धारण करना है, और उसे अपने पुत्र के सुयोग्य बनना है कि तुझे माता बनना है। तो माता बनने से पूर्व उसे कितना तप करना है, ये बेटा! देखो हमें वैदिक साहित्य से प्राप्त होता है वेद के मन्त्रों से

हमें प्राप्त होता है, तो मेरे प्यारे! मैं कहां चला गया हूं विचार यह देने जा रहा था कि माता कैसी हो और माता का जीवन कैसा हो? तो मेरे प्यारे ऋषि का कैसा जीवन हो बारह वर्षों तक माता मौन रहने में अपने में चिन्तन करती रहीं, प्रभु का स्मरण करती रहीं, मेरे प्यारे! ऋषि उदगाता बन करके उदगान गाता रहा उदगान गाने वाला मानो देखो बेटा आयुष्मती बन जाता है। महात्मा दधीचि का जीवन, मुझे बेटा स्मरण आता है, तो हृदय गद गद हो जाता है। मेरे प्यारे! देखो महात्मा दधीचि कैसे महान, क्या निर्भय क्या अश्विनी कुमारों को शिक्षा दे रहा है अश्विनी कुमारों को शिक्षा देता हुआ, दधीचि का मस्तिष्क दूरी हो रहा है। बेटा जहां, हमारे यहां जहां मानव आयुर्वेद में जितना पारायण रहा है, जहां आयुर्वेद आभा में रमण करता रहा है, वहां मेरे प्यारे उसकी उडान, लोक लोकान्तरों में रही हैं। मुझे स्मरण है, महात्मा दधीचि ने एक यन्त्र का निर्माण किया था। जो यन्त्र मेरे प्यारे! देखो, राजा मानधाता को प्रदान किया, मानकेतु को प्रदान किया, वह यन्त्र था क्या उस यन्त्र में विद्यमान हो करके और वह पृथ्वी से उडान उडता हुआ मेरे प्यारे वह गमन कर रहा है, और गमन करता हुआ वह शनि की परिक्रमा कर रहा है, बेटा कैसा शनि है वो वह शनि मण्डल कितना विशाल है मेरे प्यारे! देखो, बहत्तर सूर्य, जो ये सूर्य प्रकाश दे रहा है, ऐसे ऐसे बहत्तर सूर्य एक शनि को प्रकाश देते थे। बेटा! इतना विशाल शनि मण्डल जिसकी परिक्रमा करने वाला महात्मा दधीचि का यान उसकी परिक्रमा कर रहा है, बेटा! कितना विज्ञान मानव के मस्तिष्कों में नृत्त करता रहा है। मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने वर्णन कराया, कि आधुनिक काल का वैज्ञानिक मंगल और चन्द्रमा तक पंहुचा हैं। परन्तु देखो, मंगल और चन्द्रमा की परिक्रमा कर रहा है। मेरे प्यारे! पूर्व का मुझे स्मरण आता है दधीचि के लिए और अश्विनी कुमार जैसे वैज्ञानिक और वैद्यराज भी थे वह वाहनो में विद्यमान हो करके बेटा! शनि की परिक्रमा कर रहा है। कितना विशाल विज्ञान, इस मानव के मस्तिष्को में नृत करता रहा है। आज मैं बेटा! विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने नही आया हूं, मैं कोई व्याख्याता नही हूं, केवल परिचय देने के लिए आता हूं, परिचय देता रहता हूं।

तो आओ मेरे प्यारे! आज मैं मेरी माता की चर्चा कर रहा था, हे ममतव को धारण करने वाली! तेरा पुत्र तेरी गाथा गा रहा है। गाथा गाता ही रहता है ममतव जो उसके हृदय से उत्पन्न होता है, मेरे प्यारे जैसे पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है, इस सूर्य द्यौ लोकों से अग्नि की तरंगे आ करके, बेटा धातुओं का निर्माण कर रही हैं। निर्माण होता रहता है और उससे राष्ट्रीयता का निर्माण होता है, यदि इस पृथ्वी के गर्भ में, वसुन्धरा के गर्भ में खनिज खाद्य न हो, तो यहां राष्ट्र का निर्माण भी नही हो सकता। राष्ट्र का निर्माण इस सम्पदा के ऊपर ही राष्ट्र का निर्माण होता है। और ये सम्पदा बेटा! आती कहां से है बेटा! सूर्य की किरणों से सम्पदा वसुन्धरा के गर्भ में कहां से आती है? लोक लोकान्तरों से आती है, क्योंकि यह ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है। ब्रह्मण्डा वेद कहता है ब्रह्माण्डो पृथ्वी अस्सुतानं देवं आयन्तानि रुपानि, बेटा! पृथ्वी की गाथा गा रही है, किसकी गाथा गा रही है बेटा! यह ब्रह्माण्ड की गाथा बेटा यह ब्रह्माण्ड की गाथा लोक की गाथा जैसे वाणी इस मानव के शरीर में बेटा ब्रह्म की गाथा गा गा रही है, और ब्रह्म इससे प्रतिष्ठित होता है, कि वाणी गान गा रही है, बेटा वाणी अपनी आभाओं में परिणत हो रही है, और वाणी गान गा रही है, और उदगीत बन करके बेटा! वह परिणत हो रही है, वेद के ऋषियों ने कहा है कि हमारे यहां इस वाणी को अत्रि कहते हैं। ये वाणी अत्रि बन करके अति उच्चारण कर देती है। अति उच्चारण करती हुई, अति में परिणत होती हुई ये बेटा! अत्रि कहलाती है। हमारे यहां अत्रि ऋषि हैं। मानो सप्त ऋषियों में एक अत्रि ऋषि हैं। जो वाणी के रूप में परिणत होते रहते हैं। तो मेरे प्यारे! मैं वेद की आभा में प्रगट, वेद की तरंगों में नहीं जाना चाहता हूं, केवल तुम्हे परिचय देने आया हूं, क्या जैसे ब्रह्म की गाथा, वेद का शब्द, वाणी के रूप में मानो ब्रह्म की गाथा गा रहा है, जैसे पृथ्वी मानो इस ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है, वाणी से, जैसे माता की गाथा गाने वाला पुत्र है, इसी प्रकार मेरे प्यारे! देखो, तीन आभा हैं, इस संसार को मानो देखो

संसार को रचिता में दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है।

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है आज जब मैं ऋषि मुनियों कि आभा में प्रगट होता हूं, तो ऋषि मुनि मानो योग में प्रवेश करते रहे हैं, यौगिकता में प्रवेश करने से मुनिवरों! देखो, वहां से दर्शनों की आभा ले करके, और वह संसार को प्रसाद रूप में परिणत कर देते हैं।

तो आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चाएं प्रगट करने नही आया हूं विचार यह देने के लिए आया हूं क्या अपनी अपनी रुपाकृतियों में प्रत्येक एक दूसरे की गाथा गा रहा है। बेटा! जैसे पृथ्वी सूर्य की गाथा गा रही है, सूर्य ब्रह्माण्ड आकाश गंगा की गाथा गा रहा है, आकाश गंगा निहारिका की गाथा गा रहा है, इसी प्रकार और निहारिका लोकों की गाथा गा रही हैं, मैंने तुम्हे बहुत पुरातन काल में प्रगट कराया, क्या ये प्रभु! का राष्ट्र बेटा! कितना विशाल है। इस पृथ्वी में मानो सूर्य का प्रकाश बेटा! मानो देखो इस पृथ्वी तक आता है, और पृथ्वी से ब्रह्मणे मानो देखो, सूर्य की आभा में प्रकाश शनि का और भी लोकों का आता रहता है। परन्तु जब चिन्तन करने में, और यौगिक क्षेत्रों में प्रवेश हुआ, एक समय बेटा! भारद्वाज मुनि ने, ऋषि से सुकेता और शबरी दोनों विद्यमान थे। और ये उन्होंने कहा की महाराज! कि आप कितने विज्ञान में गति करते हैं, एक रक्त के बिन्दु से तुम चित्रों का दिग्दर्शन करा देते हो। क्या योग में कितनी आपकी गति है क्या आप योग में कितना प्रवेश कर सकते हैं। तो भारद्वाज मुनि ने कहा था क्या योगी एक एक परमाणु का विभाजन करके सर्वत्र सृष्टि का एक परमाणु में चित्रण कर लेता है। क्योंकि एक परमाणु का जब तक विभाजन करोगे, तो जितना यह सृष्टि का चक्र है, मानो देखो, उस एक परमाणु के विभक्त होते, तुम्हे दृष्टिपात आएगा ये योग में भी दृष्टिपात आता है। और जो वैज्ञानिक सूक्ष्म बन जाते हैं, उनको भी दृष्टिपात आएगा। परन्तु देखो, जहां उन्होंने कहां कि जैसे मैं एक रक्त के बिन्दु से, मैं चित्रों से उस मानव का दिग्दर्शन कराता हूं। तो हे पुत्री! जब मैं योग में प्रवेश करता हूं, तो एक जो परमाणु है मानो जो रक्त का एक परमाणु है। एक परमाणु का जब मैं उसके गर्भ में अश्रुत्तियों को ले जाता हूं। तो उसमें असंख्य, उस मानव के चित्र मुझे दृष्टिपात आते हैं। उस एक ही परमाणु में, मुझे असंख्य जन्म जन्मान्तरों के चित्र, उस मानव के दृष्टिपात आते हैं, जो रक्त के बिन्दु से उस मानव का केवल चित्र ही दृष्टिपात आता है। मेरे प्यारे! आज मैं योग में क्यों चला गया, यह प्रतीत मुझे नही होता, क्योंकि बहुत सा विचार विनिमय कालों में करते रहे हैं पुत्रों! मुझे स्मरण आता है क्या क्या एक एक परमाणु में मानव के एक एक परमाणु में जन्म जन्मान्तर दृष्टिपात आते हैं ऋषियों को, मेरे प्यारे एक जन्म नही, दो नही महर्षि सुकेता, सौमभुक ऋषि तो यह कहा करते थे, क्या मैं एक परमाणु के विभाजन करने से मुझे सत्रह करोडो के संस्कार मेरे समीप आ जाते हैं। तो मेरे प्यारे! हमारे यहां ऋषि मुनियों ने, एक अनुसन्धान नहीं किया, दो नही किया, परन्तु असंख्य प्रकार के अनुसन्धान ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में, ब्रह्मचर्य व्रत में बेटा!।

आओ मेरे प्यारे मुझे स्मरण आता रहता है योगी इस प्रकार का अनुसन्धान करते रहे हैं, वहां मेरी प्यारी माता मलदाल्सा का जीवन मुझे बेटा! स्मरण है माता मलदाल्सा श्वेतकेतु ऋषि महाराज के द्वारा अध्ययन करती थी, और महर्षि शौम कृति ऋषि महाराज की कन्या थी, माता का नाम श्वेताश्वेति था, श्रोत्रीय उनकी माता का नाम था। परन्तु एक समय जब मनु वंशलज में उनका संस्कार हुआ, तो जिस प्रथम समय गर्भ की स्थापना हुई, तो वह योग में चली गई, क्योंकि ऋषि के द्वारा वह जो योगाभ्यास करती थी। जब वह योग में परिणत हो गई, तो विचारने लगी क्या मेरे गर्भ में कौन सी संस्कारी, ऐसी आत्मा आई है, जिसका मानो देखो, मेरे जीवन से विशेष सम्बन्ध रहा, मेरे प्यारे! कौन से जन्म का सम्बन्ध है तो मुनिवरों देखो उनके गर्भ में तुम्हे प्रतीत होगा, कि प्रवाहण का जन्म सबसे प्रथम हुआ था। महर्षि प्रवाहण तो माता जब योग में उन परमाणुओ के ऊपर अनुसन्धान करने लगी, तो गर्भ में स्थित थे। उसे उनकी श्रुति चली गई। योग में मनस्तव प्राणतव चले गए, मानो प्रवृत्ति चली गई,

तो मलदाल्सा कहती है, अपने पति से भी कहा था उन्होंने गुरु से भी कहा था, उन्होंने कहा था यह जो मेरे गर्भ में आत्मा आई है, ये मेरे सौवें जन्म का इस बाल्य ऋषि से परमाणु सम्बन्ध था, मेरे प्यारे! वह आत्मा प्रवाहण ऋषि के रूप में माता के गर्भ से पृथक हुई। तो मेरे प्यारे यहां बहुत अनुसन्धान किया गया है पुरातन काल बेटा! वह काल महापुरुषों का काल था, ऋषि मुनियों का काल मेरे प्यारे! जब अनुसन्धान किया जाता है विचार विनिमय किया जाता है।

आओ, मेरे प्यारे! आज का विचार विनिमय क्या यहाँ परमाणुओं से सृष्टि का दिग्दर्शन करने वाले ऋषि हुए हैं, ये बेटा! आज का वाक् हमारा क्या कह रहा है कि बेटा! जैसे ब्रह्माण्ड की गाथा पृथ्वी गा रही हैं, ऐसे ही वाणी ब्रह्म की गाथा गा रही है। यहाँ माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है, और गाता गाता मुनिवरों! इस संसार की आभाओं में परिणत हो जाता है। ये है बेटा! आज का वाक् आज के वाक्य का उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि हमारे यहाँ बेटा! प्रत्येक वस्तु अनुसन्धानमयी कहलाती है। विज्ञानमयी कहलाती है क्योंकि बिना विज्ञान के और आध्यात्मिकवाद के हम अपना कल्याण नहीं कर सकते हैं। क्योंकि हमारा जीवन आध्यात्मिकवादी होना चाहिए। और आध्यात्मिकवाद का जो विज्ञान है ..... अश्रोत्य ......। ओ३म् ब्रह्म भू रथाः मां हृदानि गतौ शन्ना ऋषि ओ३म् मा गृहिता रथौ दधि ब्रह्माः २१.११.८९ योग आश्रम मलपुरा, मु. नगर समय प्रातः ८.३०

६ याग में हिंसा का कोई प्रसंग नहीं ०४ ०४ १९८४

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी में का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी-स्वरूप माने गए हैं। क्योंकि यज्ञ ही उसका आयतन माना गया है। मानो वह ब्रह्मः जो सु कहलाता है मानो वह सर्वत्रता में ओत-प्रोत है। उस महामना देव की महिमा का, गुणगान गाते हुए, हमारी मनोनीत इच्छा रहती है कि हम अपनेपन को ऊँचा बनायें। प्रत्येक मानव परम्परागतों से यह उड़ान उड़ता रहा है, कि हम अपने जीवन को महान और पवित्र बनाना चाहते हैं, और हम उसी काल में पवित्र बना सकते है, जब तक हमारा जीवन महान और पवित्र बन सकता है, जब हम परमपिता परमात्मा की प्रतिभा, अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान में हम रत्त रहने लगे, और उस परमपिता परमात्मा को हम यज्ञोमयी स्वरूप स्वीकार करें। क्योंकि प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही, ऊँची-ऊँची विचारों की उड़ाने उड़ता रहा है। ज्ञान और विज्ञान की उड़ान उड़ना, मानव का स्वाभाविक गुण कहलाया गया है। क्योंकि मानव का यह मनस्तव, ये गतियां करता रहता है, सन्निधान मात्र से ही, यह अपने स्वभाव की प्रतिभा का उद्घोष करता रहता है। इसीलिए हमें एक-एक वेदमन्त्र के ऊपर विचार विनिमय करना चाहिए।

यज्ञोमयी विष्णु है। वेद की आख्याकिया एक-एक शब्द कहता है कि यज्ञ विष्णु है। हमारे वैदिक साहित्य में याग के बड़े व्यापक स्वरूपों का वर्णन होता रहा है। मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे प्रेरणा दे रहे हैं कि याग के सम्बन्ध में अपना कुछ मन्तव्य दीजिए परन्तु यागाम ब्रह्म वाचो देवाः।

प्रत्येक मानव एक यज्ञोमयीशाला में विद्यमान रहता है। और विष्णु की उपासना करता हुआ, यज्ञोमयी विष्णु है। क्योंकि विष्णु कहते है, जो पालन करने वाला है। यह मानो सतों में रहने वाला है। जो सत्य है, वही पालन करता है। मानो सत्य और सतोगुण में ही पालन होती रहती है। मेरी प्यारी माता जब, बाल्य का पालन करती है। तो मानो वह पालन अपृहि वृताम् पालन सतोगुण में करती है। जब तक उसके समीप हृदय में सतोगुण नहीं आता, सत्य में अपने को नहीं ले जाती हैं। तब तक वह पालन नही करती नम्रता आ जाती है उदारता आ जाती है उस उदार सत्य में रत्त रहने से पालन की प्रवृत्तियाँ आती हैं। और वही विष्णु कहलाता है। इसीलिए जो संसार में सुगन्धि देता है, अथवा तेजोमयी देता है, वही तो पालन कर रहा है। इसलिए यज्ञोमयी विष्णु भी हमारा पालन कर रहा है। यह पालन की प्रवृत्तियाँ आ रही है।

मानो देखो, हम यागों में, ब्रह्म वाचहो विज्ञान दिव्यां गतं ब्रह्मवाचाः हे विष्णु! तू हमारा पालन कर रहा है। रक्षक है। और वह यज्ञोमयी स्वरूप मानव को बनना है। उसकी आभा में रत्त रहना, यह मानवीयतव की एक विचित्रता कहलाती है। जिसके ऊपर मानव न्यौछावर करता रहता है। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, बेटा! भिन्न-भिन्न प्रकार के, यागों का चलन होता रहा है। हमारे यहाँ अग्निष्टोम यागों का वर्णन होता रहा है। वाजपेयी यागों का वर्णन है। अजामेध, गोमेध नाना प्रकार के यागो का जैसे विष्णु याग, ब्रह्मयाग भिन्न-भिन्न प्रकार के देवी याग का भी वर्णन आता है। कन्या यागों का वर्णन भी वैदिक साहित्य में आता है। परन्तु एक एक वेदमन्त्र में यागों के बड़े विचित्र अपने में रत्त रहने विधि विधान क्रियाओं वाला एक याग है, जिसको हमारे यहाँ विष्णु कहते हैं। मानो देखो, जिसके ऊपर मानव उड़ाने उड़ता रहता है। चित्रों को दिग्दर्शन करता रहता है। तो मुनिवरों! देखो, विज्ञान के युग में भी, वही प्रवेश करता है, जो यज्ञोमयी विष्णु को जान लेता है। वही मानव ज्ञान की पराकाष्ठा में रत्त हो जाता है, जो यज्ञोमयी विष्णु के समीप जा करके अपनी प्रतिभा में प्रतिभाषित हो जाता है।

तो विचार विनिमय क्या? हमें मुनिवरों! देखो, यागाम् भविते देवाः मेरे प्यारे महानन्द जी अपने में मानो ये अपनी कल्पना कर रहे हैं कि मैं भी दो शब्दों की विवेचना कर सकूँ परन्तु देखो, इस सम्बन्ध में, मैंने बहुत पुरातन काल में यह कहा है कि मेरे प्यारे महानन्द जी के हृदय में एक दाह रहती है। एक अग्नि की प्रतिभा रहती है। जिससे वह अपने उद्गार उद्घोष करते रहते हैं। और इनके विचारों में एक दाह एक वेदना रहती है।

उस वेदना के साथ, मैंने भी पुरातन कालों में वेदना के सम्बन्ध में प्रकट कराया था। प्रत्येक मानव के हृदय में एक वेदना का उद्घोष होता रहता है। उस वेदना के साथ, मानव क्या अपने में बनना चाहता हैं? इसके ऊपर मानव अपना निर्णय स्वतः देता है। अब मेरे प्यारे महानन्द जी अपने दो विचार व्यक्त करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः-ओ३म् यमा रथं ब्रह्म मनश्चमा रेवाः यजनौ वर्णं ब्रह्मः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अमृतमयी वृष्टि कर रहे थे। वे याग के सम्बन्ध में, अपने विचारधारा व्यक्त कर रहे थे, और यज्ञोमयी विष्णु की विवेचना में लगे हुए थे। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा जैसे पालन करने वाला है। अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव प्रगट कर रहे थे परन्तु जहाँ यह हमारी आकाशवाणी की जा रही है, उस स्थली पर एक याग हुआ। और मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कुछ उच्चारण करने आया हूं। आज मैं अपने जो आन्तरिक विचार हैं, मैं अपने यज्ञमान को कुछ अपनी शुभ कामना प्रकट करने आया हूँ। मेरे अन्तर्हृदय की यह वेदना रहती है। हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। क्योंकि यागाम् ब्रह्मवाचाः जिस गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता है। और यागों में उसका चलन होता है। वे गृह सौभाग्यशाली होते है। यज्ञमान का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, यह सदैव हमारी यह कामना रहती है। उसके जीवन की प्रतिभा, महानता में परिणत होती रहे।

आज जो युग चल रहा है। यह जो काल का परिवर्तन हो रहा है। इसके ऊपर जब मैं अपने विचारों को ले जाता हूँ। तो मेरा अन्तरात्मा यह कहता रहता है कि ये संसार अग्नि की वेदी पर विद्यमान हो गया है। अग्नि की वेदी , अग्नि की प्रतिभा का जन्म हो गया। प्रत्येक मानव अपने अपने विचारों में अपने को सम्प्रदाय के एक रूढ़िवाद के एक आँगन में ले जाता चला जा रहा है। राष्ट्रवाद वह जो ईश्वरीय, धर्मों की विवेचना कर रहा है। उस धर्म में राजा, अपनी प्रजा की रक्षा नहीं कर पा रहा है, प्रजा राजा की रक्षा नहीं कर सका है। अपनी ही रक्षा नहीं कर रहा है। जब मैं इस संसार में भ्रमण करता हूँ। जब मैं इस संसार के बुद्धिजीवी प्राणियों के समीप पहुँचता हूँ। तो ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्धिजीवी ही नहीं है। वह किसी सत्य वाक् का उच्चारण करने में असमर्थ रहते है। जब सत्य वाक् उच्चारण करने में असमर्थ हैं तो उनका बुद्धिजीवी होना क्या? मानो बुद्धिजीवी वह प्राणी बन गएं हैं। या अपने को रूढ़िवाद में ले गएं हैं। रूढ़ि ज्यों की त्यों बनी हुई है। मानव के मस्तिष्क का विकास करना चाहता है। उद्घोष करना चाहता है। परन्तु रूढ़ियों में इतना संकीर्ण बन गया है। कि अपने सत्य वाक्य को उच्चारणं करने में असमर्थ है।

द्रव्य एवम् पद की लोलुपता का दुष्प्रभाव

वह क्यों है? केवल पद लोलुपता एक मूल कारण है। एक द्रव्य की लोलुपता का एक मूल कारण है। पुरातन काल में देवर्षि नारद मुनि के काल में, द्रव्य की लोलुपता नहीं थी, परन्तु केवल एक लोक की इच्छा थी, लोकेष्णा में मानो परिणत हो रहा था आधुनिक काल का जो जगत है, बुद्धिजीवी है। वह द्रव्य में ही और लोकेष्णा में ऊंचा बनना चाहता है। लोकेष्णा में उसकी प्रतिष्ठा रहे या न रहे परन्तु द्रव्य की लोलुपता रहनी चाहिए, इस द्रव्य की लोलुपता में मानो अपना हित और अहित नहीं विचार रहे है।

ऐसा यह भव्य काल एक समय ऐसा काल है। इस समय की अवहेलना मैं नहीं कर सकता, न कोई प्राणी कर सकता है। परन्तु विचार आता रहता है। जब मैं राष्ट्रीय क्षेत्रों में प्रवेश करता हूँ। तो राजा सत्य नहीं उच्चारण कर सकता, वह सत्यवादी अपने गृह में नहीं बन रहा है। पुरातन काल के राजा, जब द्वितीय राष्ट्रों में प्रवेश करते

थे, तो वहाँ वह मिथ्या के गर्भ में सत्य और सत्य के गर्भ में मिथ्या उच्चारण करते रहते थे, कि राष्ट्र की रक्षा है। आज का जो राष्ट्रीयवाद है। वह न तो सत्य के गर्भ की चर्चा कर रहा है, ना मिथ्या के गर्भ की चर्चा कर रहा है। उसके समीप केवल एक पद की लोलुपता लगी हुई है। वह जो पद की लोलुपता लगी हुई है। वह प्राणी प्राणी का संहार कर रही है वह पद की लोलुपतता मानव मानव का भक्षण कर रही है अग्नि की अग्नि में परिणत हो रहा है। जब वह वैज्ञानिकों के समीप प्रवेश करता हूँ तो वैज्ञानिकों के यहाँ द्रव्य का, विज्ञान का दुरूपयोग हो रहा है। पुरातन काल का विज्ञान, राजा रावण के राष्ट्र का विज्ञान जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से चर्चा करता हूं वास्तव में विनाश का मूल तो वह ही बना। द्वापर के काल का विज्ञान भी मूल ही विनाश बना।

स्वार्थपरता के कारण विज्ञान का दुरूपयोग

देखो, यह राजाओं की बुद्धि की सफलता नहीं है। वैज्ञानिक जन स्वार्थपरता में आकार के और वैज्ञानिकों के यहाँ जब राजा स्वार्थपरता में आ जाता है जो विज्ञान का दुरूपयोग हो जाता है, और विज्ञान के दुरूपयोग होने पर मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने बहुत पुरातन काल हुआ जब उन्होंने विज्ञान की चर्चाएँ की थीं। उन्होंने महर्षि भारद्वाज मुनि की चर्चायें की और विज्ञान के दुरूपयोग होने से उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार की वार्त्ताएँ प्रकट कीं परन्तु देखो, आधुनिक जगत उससे भी अधिक विज्ञान का दुरूपयोग कर रहाहै। विज्ञान का दुरूपयोग हो रहा है।

चरित्र की हीनता से राष्ट्र में अग्निकाण्ड

जहाँ मेरी पुत्रियों के नृत होते होते हों वहाँ ऋषि-मुनियों का चरित्र आना चाहिए। जब ऋषि-मुनियों का चरित्र नहीं आता, मेरी पुत्रियों के नृत आते है। मेरी पुत्रियों अपने को हीनता में दृष्टिपात करके प्रसन्न हो रही हैं। मानव पुत्रियों के चित्रों का नग्न करता हुआ अपने में दृष्टिपात कर रहा है। परन्तु प्रसन्न हो रहा है।

राजा को ये विज्ञान की प्रतिभा यह दोनों ही अवहेलना ग्रस्त हो गई है। जब यह विचार आता है कि इसका बनेगा क्या ?इसका परिणाम क्या होगा? तो मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से बहुत पुरातन काल में इस प्रकार के संसार के लक्षणों की जब चर्चाएँ की, तो पूज्यपाद गुरुदेव ने केवल अग्निकाण्ड की चर्चा की। मैं भी आज अग्निकाण्ड की चर्चा कर रहा हूँ। और विचार आता है अग्नि प्रदीप्त होने वाली है वह समय निकट आ रहा है, जब प्राणी प्राणी का भक्षण करके, यहाँ अन्धकार की प्रतिभा छा जाएगी। मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष विवेचना, भविष्य वक्ता मैं नहीं हूँ, मैं भविष्यवाणी उच्चारण करने नहीं आया, क्योंकि भविष्यवक्ता तो प्रभु ही कहलाता है। वही जानता है कि संसार का क्या बनेगा? परन्तु देखो, मानव तो अपनी क्रीडा करता रहता है विचारों की विचारों में एक कृति का रमण करता रहता है। याग जैसे कर्म को, जब आधुनिक काल का मानव, एक पाखण्ड की दृष्टि उच्चारण कर रहा है। दृष्टि से पान कर रहा है। जब इस प्रकार का विचार बन जाता है। मानो देखो, देवताओं के भोजन को भी, पाखण्ड कह रहा है। और देखो, इस नृत्तिका को दृष्टिपात करने वाला, मानव इसे पाखण्ड नहीं कह सकते। उसे पाखण्ड नहीं कहता। कैसा पाखण्ड यह जगत है? यह कैसा समय है? मुझे स्मरण है कि राम के काल में, याग की निन्दा करने वाले की वाणी को शान्त कर दिया जाता था।

याग से पवित्रता

मुनिवरों! देखो, जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक समय मुझे महाराजा अश्वपति के यहाँ एक वृष्टि याग में ले गएं थे राजा की प्रजा मानो याग के लिए ऐसे लालायित हो रही थी, कि हम देवताओं का पूजन करें, देवताओं को हवि प्रदान करें, जिससे वायुमण्डल पवित्र हो जाएं। परन्तु देखो, आधुनिक काल का मानव इन वाक्यों को जानता हुआ भी लज्जित हो रहा है। इन वाक्यों को जानता हुआ भी अपने मे पामरपने में परिणत हो रहा है। जब मैंने बहुत पुरातन काल में, अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि यह जो आधुनिक काल का, वायुमण्डल चल रहा है। इस वायुमण्डल में मानों संघर्ष हो रहा है। परमाणुओं का संघर्ष हो रहा है। मानव की वाणी का आदान प्रदान हो करके

इसका एक नृत्य हो रहा है। और उससे वायुमण्डल का निर्माण है। परन्तु वैज्ञानिक जन इस वाक्य पर लगे हुए हैं आधुनिक काल में, क्या हम मानो यह जो दूषित वायुमण्डल बन गया है, इस दूषितपने को कैसे शान्त कर सकते हैं? तो वैज्ञानिकों का जब भी समूह विद्यमान होता है। तो कुछ वैज्ञानिकों ने यह निर्णय दिया है। कि द्यौ घृत में ऐसी विशेषता है। जो अग्नि में प्रदान करने से परमाणुवाद उद्बुद्ध हो करके और वह वायुमण्डल में प्रवेश करके अशुद्ध परमाणुओं को नष्ट करके शुद्ध परमाणुओं को जन्म देता रहता है। ऐसा मानो देखो, आधुनिक काल का वैज्ञानिक स्वीकार कर गया है। परन्तु देखो, याग के कर्मकाण्ड, याग की प्रतिक्रिया को न ला करके उसको एक रुढि का एक समाज का, कुछ अंग रूढ़ि को स्वीकार इसके रूढ़ि में लाने वाला जगत बन गया। वैज्ञानिकजन इस रूढ़ि को समाप्त करना चाहते हैं।

याग में हिंसा का कोई प्रसंग नहीं

परन्तु देखो, कहीं मोहम्मद के मानने वाले, कहीं ईसा को मानने वाले, कहीं बुद्ध को मानने वाले, नाना प्रकार की रूढ़ियों में यह प्राणी सत्य वक्ता नहीं बन रहा है। सत्य उच्चारण नहीं कर रहा है। उसको केवल एक आर्यों का कोई अंग स्वीकार कर रहा हैं याग को कोई कहता है ये तो मानो शोभनीय गौघृताम् वायुमण्डल को दृष्टिपात नहीं किया जा रहा है। वह समय मुझे स्मरण है, वैज्ञानिक जन जब दूषित वायुमण्डल बनाते तो राजा नाना प्रकार के यागों में परिणित हो जाता था। आधुनिक काल में मानो महाभारत के काल में वाममार्ग की प्रथा आई। उस प्रथा में नाना प्रकार की हिंसा यागों में परिणत हुई। यह भी संसार समाप्त होने जा रहा है। कुछ प्राणियों में इस प्रकार की हीनता रह गई है, जो यागों में हिंसा का प्रतिपादन करते है। मैं हिंसा करने वाले व्यक्तियों से ये प्रश्न करता रहता हूँ। जब याग मुक्ति के लिए, जब यह आत्मा का याग माना गया है। परम पवित्र कर्म ही याग है। तो यह हिंसा कैसी है? परन्तु देखो, यहाँ वाजपेयी याग, नाना प्रकार के यागों में हिंसा का प्रतिपादन हुआ। परन्तु आधुनिक काल में कुछ महापुरूष इस प्रकार के मानो आते रहते हैं जो शुद्ध वायुमण्डल को प्रसारित करते हैं। विचार आता है। हिंसा यागों में नहीं होनी चाहिए, याग में हिंसा का प्रसंग ही नहीं होता। वहां कोई प्रसंग ही नही है साहित्य में कोई प्रसंग नही परन्तु देखो, जब मैं यह विचारता रहता हूँ कि यह जो समाज है जब यह विज्ञान में स्वीकर करता है कि गऊ के घृत में और साकल्य में वह शक्ति है कि वायुमण्डल को दूषित से शुद्ध बना सकता है, पवित्र बना सकता है, दूषित आरोपण को समाप्त कर सकता है प्रदूषण को समाप्त कर सकता है तो क्यों नही किया जा रहा है। उसके मूल में मानो देखो, यह नाना प्रकार की रुढियां विद्यमान हैं।

रूढ़ियो में यह प्राणी अपने को नष्ट कर रहा है। राष्ट्र अपने को नष्ट कर रहा है। जब मैं राजाओं के समीप जाता हूँ, कि हे राजन! धर्म क्या है? तो वह कहता है कि देखो, मोहम्मद का धर्म, ईसा का धर्म, बुद्ध का धर्म, नाना प्रकार के धर्मों की गणना हो जाती है। जब मैं यह प्रश्न करता हूँ शास्त्रीय रूपों से, कि धर्म एक वचन या बहुवचन है? तो वहाँ वे मौन हो जाते हैं। और वहाँ वह नाना धर्म कहकर के एकवचन को अपने से दूरी कर देते हैं। यह कैसी शिक्षा प्रणाली की एक अवहेलना हो रही है। व्याकरण की अवहेलना हो रही है। नाना धर्म कह करके मानव प्रसन्न है। एक धर्म कह करके प्रसन्न नहीं। यह कैसी अवहेलना हो रही है शिक्षा की। आज मैं जब गुरु शिष्य परम्परा में जाता हूँ। तो मुझे आश्चर्य आता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जो महाराजा अश्वपति के यहाँ अध्यापन का कार्य करते थे, ब्रह्मचारियों का निर्माण करते थे। परन्तु देखो, आधुनिक काल में निर्माण नहीं हो रहा है। आधुनिक काल में तो रूढ़ियों का प्रसारण हो रहा है। और यह रूढ़ियों ही राष्ट्र के लिए मृत्यु का कारण बनती है। आधुनिक जगत में विज्ञान जहाँ, दुरूपयोग में जा रहा है, उसके मूल में रूढ़ि हैं। जब मैं यह विचारता रहता हूँ, कि रूढ़ियों का जो आदान-प्रदान हो रहा है। ये रूढ़ियाँ समाप्त होनी चाहिए तो राष्ट्र में बेटा! यह रूढ़ि समाप्त नहीं हो सकती। क्यों नहीं हो सकती? इसीलिए नही हो सकती कि धर्म है, अरे, धर्म को तुम रूढ़ि कर रहे हो। यह तुम्हारा

विकासवाद बन गया है। क्या मानो देखो, इस पृथ्वी के ऊपर, हम गति करने वाले प्राणियों में, जब प्रीति नहीं रहेंगी, एक दूसरा एक दूसरे के समीप नहीं रह सकेगा, तो हे मानव! हे राजा! तेरा यह जो अवहेलनाकृत जो तेरा विचार है, यह तुझे निगलता चला जाएगा, एक समय तेरी ही मृत्यु का कारण बनेगा।

रूढ़ियों और विज्ञान के दुरूपयोग

ये समाज तो परन्तु देखो, इस प्रकार की कृतियां मनाएगा राष्ट्र का जो निर्माण राष्ट्र का जो निर्वाचन होता है मैंने कई काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि विज्ञान का जो दुरूपयोग हो रहा है, उसके मूल में शिक्षा प्रणाली है। उसके मूल यह यह रूढ़िवाद है मानो देखो, इसी प्रकार मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से उच्चारण कर रहा हूं कि आधुनिक काल का विज्ञान मानव को त्रास दे रहा है। भयभीत कर रहा है। मानव को अमानवता के क्षेत्र में ले जा रहा है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कई काल में यह कहा है कि यह संसार अग्नि वेदी पर विद्यमान है। यहाँ जिन गुरुओं ने, जिन आचार्यों ने मानव की रक्षा करने के लिए अपना विचार बनाया, आधुनिक समाज मानो वही एक मृत्यु का, अग्नि का काण्ड बन करके रह रहा है। राष्ट्र तो द्रव्य की लोलुपता से नष्ट होता चला जा रहा है।

आधुनिक विज्ञान से मानवता का ह्रास

आज मैं विशेष विवेचना नहीं देता हुआ, केवल पूज्यपाद गुरुदेव को यह उच्चारण करना चाहता हूँ। आधुनिक काल का जो विज्ञान है। वह मानो देखो, जहाँ एक दूसरे के नष्ट करने वाले परमाणु और अणुओं का निर्माण कर रहा है। वहाँ जल अस्त्रों का भी निर्माण होने लगा है। परन्तु देखो, वह कालं बृहि देखो, ऐसे ऐसे यन्त्र, निर्माण होना यह कोई आश्चर्य नहीं है। परन्तु इसमें मानवता का ह्रास हो रहा है। जब मानवता का ह्रास हो रहा है, तो विज्ञान का बनेगा क्या? विज्ञान की प्रतिभा क्या रही है? देखो, विज्ञान की प्रतिभा है। जहां मानव देखो, अपने में यन्त्रों का निर्माण करके मानव की रक्षा के लिए यन्त्रों का निर्माण होना चाहिए, परन्तु वहाँ नाना प्रकार की चित्रावली बन करके मेरी पुत्रियों का नृत्य आ रहा है। और उसमें केवल विलासिता का साकल्य बनाया जा रहा है। इसी विलासिता के साकल्य में अपने को मृत्यु के आँगन में ले जा रहा है। क्या ये राष्ट्र, यह समाज कैसे जीवित रहेगा?

विचार आता है मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि वह समय दूरी नहीं है, जब अग्नि के काण्ड होने वाले हैं, वह समय दूरी नहीं जब मानव मानव का भक्षण करने के लिए तत्पर हो रहा है। आधुनिक काल में हो रहा है। आज तो रूढ़ियों में आ रहा है। केवल उसका धर्म कह करके, मानव-मानव के रक्त का पिपासा बन रहा है। क्या यह धर्म है? धर्म में तो मानव की रक्षा होती है। धर्म में तो मानव का जीवन बनता हैं, परन्तु यहाँ धर्म के नामों का, मानव-मानव का हनन कर रहा है। नष्ट कर रहा हैं कृतिका में रत्त हो रहा है। तो विचार विनिमय क्या मैं मानो देखो, अपने पूज्यपाद गुरुदेव से मानो आज्ञा पाऊंगा।

वही प्राणी बचेगा जो साधक होगा

मैं कोई व्याख्याता नहीं मैं तो इतना उच्चारण कर रहा हूँ। हे यज्ञमान! तेरा जो शुभ कर्म है। तेरे यहाँ जो द्रव्य का सदुपयोग होता है। वह सदुपयोग सदैव बना रहे। और द्रव्य का दुरूपयोग न होकर के, क्रोधाग्नि को शान्त करता हुआ, तू अपने में मौन रह करके, अपने को विचित्र बनाता चल। मानो देखो, ये संसार में वही प्राणी जीवित रहेगा, वही प्राणी जो अपने आत्मबल को प्राप्त कर सकेगा जो साधक होगा, और रूढ़ियों से उपराम होकर के, याग की सुगन्धि देगा। यह सुगन्धि चाहे मोहम्मद को मानने वाला हो, चाहे ईसा को मानने वाला हो चाहे किसी भी रूढ़ि का हो, परन्तु यह सुगन्धि के ये परमाणु सबके लिए एक ही वृत्त होते हैं। वह एकोकी वचन में रहते है। यह वास्तव में धर्म की प्रतिभा कहलाती है। और देखो, दुर्गन्धम ब्रह्मे देखो, सुगन्धि सबके लिए सुन्दर है।

ये तो सदैव एक ऐसा वृत्त है। जब ऋषि मुनियों ने बहुत अनुसन्धान करके इसको अपने में धारण किया, अपने में लाने का प्रयास किया। तो आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह चाहता हूं आहारम् ब्रह्मवाचो जहाँ आहार से बुद्धि का निर्माण होता है, वहाँ आहारों से बुद्धि का विनाश हो रहा है। मानो मेधा का विनाश हो रहा है। विचार क्या? आहार-व्यवहार हे यज्ञमान! पवित्र रहना चाहिए, यज्ञमानो का। हे राजा! यदि तू महान बनाना चाहता है राष्ट्र को, तो तेरा आहार और व्यवहार, शिक्षा प्रणाली ये तेरा पवित्रवाद रहना चाहिए। विज्ञान का सदुपयोग होना चाहिए। इस मानव की चिन्ता के मूल में एक विज्ञान का दुरूपयोग है इसीलिए विज्ञान का दुरूपयोग नहीं होना चाहिए। इसका सदुपयोग होना चाहिए। इसका सदुपयोग होकर के जहाँ पुत्रियां के नृत्य होते हैं, वहां ऋषि मुनियों के जीवन चरित्र मेरी पुत्रियों के जीवन चरित्र महान होने चाहिए, जिससे प्रत्येक मानव अपने में गौरव कर सकें कि वास्तव में मेरा जीवन इस प्रकार का बनना चाहिए, जहाँ महर्षि कणाद और महर्षि जैमिनी जैसे बुद्धिमानों का नृत्य हो। जहाँ देखो, भारद्वाज मुनि महाराज अपने पूर्वजों के चित्रों को यज्ञशाला में यन्त्रों में देते रहते थे, इस प्रकार का विचार नृत्य होना चाहिए। आज मैं जब शिक्षा प्रणाली की विचित्रता में जाता हूँ। तो मुझे आश्चर्य आता है। यहाँ प्रत्येक मानव चिन्तित होता जा रहा है। विचारक नहीं रहा है। परन्तु देखो, उसके मूल में राष्ट्र का स्वार्थवाद है। पद की लोलुपता है, द्रव्य की लोलुपता है। ये जीवन को नीचा बनाने के लिए है। परमात्मा का चिन्तन, याग जैसे कर्म आत्मीय कर्म और देखो, परमात्मा का चिन्तन होना चाहिए। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा चाहूँगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः- मेरे प्यारे ऋषिवर! मेरे प्यारे महानन्द जी ने आज, अपने जो विचार दिए उनके हृदय में एक दाह हैं, एक वेदना लगी हुई है। क्योंकि देखो, प्रत्येक मानव यही चाहता है कि मैं आनन्द से, संसार में अपने जीवन को व्यतीत करूँ। और वह आनन्द भौतिकवाद में नहीं, वह आनन्द तो केवल अपनी प्रवृत्तियों को ऊँचा बनाने से प्राप्त होता है। तो यह मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अपने वाक्य प्रकट किए, मानो यज्ञमान को इन्होंने अपना विचार दिया। आज मैं भी हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। द्रव्यां भूतः प्रह्ला द्रव्य का सदुपयोग होता रहे। जीवन की धारा महान बनी रहे। और इसके साथ ही आज का हमारा वाक्य अब समाप्त होने वाला है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने जो विचार वैज्ञानिकों के सम्बन्ध में राष्ट्र के सम्बन्ध में दिए हैं। वो मानो अवहेलना कृत्त है। इसलिए हमारी मनोनीत इच्छा यह है कि प्रत्येक प्राणी अपने में महान और सुसज्जित और विज्ञान को लेकर राष्ट्रवाद समाज को ऊँचा बनाएं और विज्ञान का दुरूपयोग न हो। ये आज का वाक् समाप्त यहीं होता है। अब वेदों का पठन-पाठन होगा। ग्राम पठेड़ी समय प्रातः ८.०० बजे

७ याग स्वरूप पर ऋषियों का चिन्तन १०-०९-१९८४

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, ये पाठ्यक्रम, परम्परागतों से विचित्रतम माना गया है क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्रों में, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान किया जाता है और जितना भी ये ब्रह्माण्ड मानो जितना भी जगत, उस सर्वत्रता में वह ब्रह्ममयी स्वरूप माना गया है।

यज्ञोमयी स्वरूप परमात्मा

हमारे वैदिक साहित्य वालों ने, उस परमपिता परमात्मा को विज्ञानमयी स्वरूप माना है, जहाँ विज्ञानमयी स्वरूप माना गया है वहाँ यज्ञोमयी स्वरूप का भी वर्णन आता रहता है। क्योंकि परमपिता परमात्मा को यज्ञोमयी स्वरूप माना गया है। जितना भी यह संसार रूपी याग हो रहा है मानो वे परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन, अथवा उसकी प्रतिभा में एक याग होता हुए दृष्टिपात आ रहा है। उसी ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार की वनस्पतियाँ हैं, वे नाना रूपों में एक याग कर रही हैं। मानों अपने से सुगन्धि देती रहती है और दुर्गन्धियं को अपने में सिंचन करती रहती है, अपने में धारण करती रहती है।

परन्तु ये उस महान, मेरे प्रभु का कितना यज्ञोमयी अथवा विज्ञानमयी स्वरूप का वर्णन होता रहता है। वे परमपिता परमात्मा सर्वत्र विज्ञान के मूल में हैं क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर वर्तमान के काल तक कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ जो परमपिता परमात्मा के विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके क्योंकि वे परमपिता परमात्मा सीमा से रहित हैं, वो सीमाओं में आने वाले नहीं हैं। वैज्ञानिक एक अणु, परमाणु का निर्माण नहीं कर सकते, उनको गति प्रदान नहीं कर सकता। इसी प्रकार वे परमपिता परमात्मा उस सर्वत्रता को धारण किए रहते हैं। वह उसका आयतन माना गया है। परन्तु जो जिसका आयतन माना गया है उसका विज्ञान कितना नितान्त, महानता में गति करता रहता है।

विष्णु

आओ मेरे पुत्रो! आज का हमारा वेदमन्त्र, नाना के यागों का चयन करता है। जहाँ हम परमपिता परमात्मा को मूलक स्वीकार करते हैं मानो देखो, उसे पञ्च महा भौतिकीकरण कहा जाता है। वही इस पञ्चमहाभौतिकता को अपने में धारण कर रहा है। अथवा यागों का चयन हो रहा है। जिस याग में मानव परिणत हो जाता है और उसमें रत्त हो जाता है तो यज्ञोमयी स्वरूप माना गया है, मानो वे जो ब्रह्म, परमपिता परमात्मा विष्णु है जो पालनकर्त्ता के रूप में हमें दृष्टिपात होते रहते है मानो वह विष्णु सत् में ही रत् होने वाला है तो वह विष्णुवत् कहलाता है।

दार्शनिक स्वरूप

तो विचार-विनिमय क्या मैं विशेष विवेचना में तुम्हें नहीं ले जाना चाहता हूँ। आज बेटा! तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ ऋषि मुनि अपनी आभा में अथवा अपने आसनों पर विद्यमान हो करके और अपने में मुद्रित हो जाते। मानो अपने में संलग्नता से उस महान प्रभु का चिन्तन करते हुए और उसके यज्ञोमयी स्वरूप को अपने में धारण करना अथवा उसको जानना एक मानवीयता का, दार्शनिक माना गया है।

महर्षि कागभुषुण्ड जी और महर्षि लोमश

तो मेरे प्यारे! देखो, नाना ऋषिवर याग के प्रसंग में, अपने को ले जाते जैसा बेटा! इससे पूर्व काल में हमने तुम्हें यह वर्णन कराया कि महर्षि कागभुषुण्ड जी और महर्षि लोमश दोनों की विवेचना आती रहती है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे एक समय प्रकट कराया था कि आधुनिक जो जगत है, वर्तमान का जो काल है वह

कागभुषुण्ड जी के सम्बन्ध में यह निर्णय देते हैं कि वे कागा पक्षी है मानो वे कागभुषुण्ड जी को ऋषि न कह करके ऐसा उद्धृत करते हैं कि एक समय में जब कागभुषुण्ड जी मानव की योनि में थे तो उन्होंने महर्षि लोमश मुनि का अपमान किया और उन्होंने उन्हें श्राप देकर कागभुषुण्ड की योनि में परिणत कर दिया। परन्तु वे उन्हीं के चरणों में रहे और उन्हीं की वन्दना करते रहे।

कागा प्रवृत्ति

ऐसा मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय वर्णन कराया। परन्तु प्रायः यह वाक् अशुद्ध है क्योंकि कागा, पक्षियों में सबसे महान चंचल होता है और उसको चंचल होने के नाम से उसे कागा के रूप में परिणत किया जाता है। उसकी वाणी में कठोरपन होता है। परन्तु प्रायः कागभुषुण्ड जी भी अपने में मानो ज्ञान का सदैव भण्डार और ज्ञान की प्रतिभा में रत्त रहते हैं। परन्तु ज्ञान में वे चंचल थे। और चंचल होने से माता उन्हें जब बाल्य काल में वे अध्ययन करते रहते थे तो माता कहती कि बाल्य तुम्हारी प्रवृत्ति तो ज्ञान के सम्बन्ध में कागा प्रवृत्ति कहलाती है। तो उसी समय माता ने जैसे कागो प्रवृत्ति वाला उच्चारण किया तो उनका नाम कागभुषुण्ड उद्धृत होने लगा। मानो देखो, उसको उच्चारण करने लगे। प्रायः माता का यह नामोकरणः वह एक व्यापिक रूप धारण कर गया।

महर्षि कागभुषुण्ड जी का मौन अनुष्ठान

मेरे प्यारे! देखो, एक समय कागभुषुण्ड जी ने मुनिवरों! देखो, ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश किया तो उन्होंने एक समय बेटा! बारह वर्ष का अनुष्ठान किया और बारह वर्षों तक उन्होंने वेद का अध्ययन किया। दर्शनों के गर्भ में चले गए, मौन रहते थे। जब मौन रहते थे, तो एक समय भ्रमण करते हुए महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुणधती ने ये विचारा कि कागभुषुण्ड जी अनुष्ठान कर रहे हैं। चलो उनके अनुष्ठान में मानो हम भी सम्मिलित होना चाहते हैं। तो माता अरुणधती और वशिष्ठ मुनि महाराज दोनों भ्रमण करते हुए वे कागभुषुण्ड जी के आश्रम में पहुँचे। तो कागभुषुण्ड जी अनुष्ठान में परिणत थे, मौन रहते थे।

परन्तु माता अरुणधती और वह जब उनके समीप पहुँचे तो मुनिवरों! उन्होंने मानों देखो, उनका स्वागत किया। मौन होकर के, तो माता अरुणधती ने कहा कि हे ऋषिवर! तुम मौन क्यों रहते हो? तो उन्होंने लेखनीबद्ध करके कहा कि मौन इसलिए रहता हूँ कि रात्रि अपने में मौन रहती है और मानव को शक्ति प्रदान करती है। मानो जब उन्होंने यह वाक्य कहा कि रात्रि मौन रहती है तो पुनः उन्होंने यह प्रश्न किया कि ऋषिवर! तुम मौन क्यों रहते हो? उन्होंने कहा कि मौन मानो एकोकी मौन रहता है लेखनीबद्ध करते रहे कि एकोकी जो होता है वह मौन रहता है जैसे मानव के, यदि मानव शरीर में रसना और तालु नहीं होंगे तो एकोकी रसना मानो मौन रहेगी और यदि रसना है, तालु भी है दोनों का समन्वय नहीं रहता तब भी मौन रहता है।

मौन का अभिप्राय

परन्तु मौन क्यों रहा जाता है? इन्होंने कहा कि मौन का यह अभिप्राय है कि प्रत्येक वस्तु मौन है। परमाणु अपने में गति कर रहा है परन्तु वास्तव में वह मौन रहता है। तो जब ऋषिवर ने यह वाक् उन्हें उत्तर देते हुए कहा तो माता अरुणधती ने कहा कि सन्तुष्टि नहीं हुई, ऋषिवर! इन वाक्यों से संतुष्टि नहीं हुई है। क्योंकि प्रत्येक परमाणु अपने में गतिशील हो रहा है, वह अपनी भाषा में भाषित हो रहा है परन्तु वह गति करता हुआ भी गतिवान बनकर के अपनी भाषा में उद्धृत हो रहा है।

तो मेरे प्यारे! देखो, कागभुषुण्ड जी ने कहा कि इतना मौन मानो देखो, परमाणुवाद मेरे मानवीयतव में गति हो रही है वह भी अपनी भाषा में कुछ न कुछ उद्धृत कर रहा है। परन्तु मैं संसार के सम्बन्ध में मौन रहता हूँ। आत्मा के सम्बन्ध में, परमात्मा के मिलान में मौन नहीं रह सकता।

स्थूल रूप में मौन

मानो देखो, जब कागभुषुण्ड जी ने यह कहा तो उस समय माता अरुणधती ने कहा कि हमें अब, कुछ संतुष्टि होनी प्रारम्भ हुई है। क्योंकि प्रत्येक परमाणु और देखो, वायु गति करने वाला भी मौन नहीं रहता है। परन्तु अपने में मौन रहना, केवल संसार के नाना प्रकार के देखो, वे स्थूल रूप में मानव को मौन रहना है। मेरे प्यारे! जितना भी सूक्ष्मवाद है उसमें मानव मौन नहीं रहता है उसमें मानव की मौन गति नहीं रह सकती तो इसलिए बेटा! यह उनमें सिद्ध हो गया तो वे अनुष्ठान में सम्मिलित हो गए।

वेदों में याग

तो मेरे प्यारे! देखो, कागभुषुण्ड जी बारह वर्षां तक, क्या पान करते थे उनके एक ब्रह्मचारी थे। उद्दैत्वक ऋषि महाराज, उद्दैत्वक् ब्रह्मचारी उनके यहाँ मानों उन्हें पंचांग अग्नि में तपा करके पान कराते थे। उनका जो आसन था, वह सर्पकेत्वीय एक औषध होती है, उसका आसन बनाकर के मानो उस पर वे विश्राम करते थे। उसी में रहते थे, बारह वर्षां तक उन्होंने अनुष्ठान किया। तो वह तप में परिणत होते रहे परन्तु याग के ऊपर अनुष्ठान कर रहे थे, अनुष्ठान याग के ऊपर क्यां कर रहे थे? क्योंकि संसार में जब उन्होंने वेद के अक्षरों को लिया, वेद के मन्तव्य को लेना प्रारम्भ किया तो वेदों में याग का बड़ा वर्णन आया। परन्तु कहीं वाजपेयी याग का वर्णन है तो कहीं अग्निष्टोम याग का वर्णन है, कहीं मानों देखो, शिव और नाना प्रकार के यागों का चयन वैदिक साहित्य में उन्हें प्राप्त हुआ। मानों देखो, राष्ट्रीय विचारों में भी उन्हें याग की ही प्रतिभा में यह मानवीयतव प्राप्त हुआ।

तो मुनिवरों! देखो, जब याग का वर्णन आया, तो उसी के ऊपर अनुसंधान करने लगे। कहीं-कहीं तो वेद के साहित्य ने यह कहा है, वेदमन्त्र ने यह कहा है कि माता-पिता जो संतान उपार्जन करते हैं उनका नाम भी याग है। वो भी स्वाहा है, वह याग है, वह शिशु है वह वृणिता है मानो वह ही सुविता कहलाता है।

मोक्ष का मूलक

तो ऐसा मुनिवरों! देखो, वैदिक साहित्य में जब यह वर्णन किया तो कागभुषुण्ड जी का बारह वर्षां तक इसी प्रकार का अनुष्ठान चलता रहा, और बारह वर्षों तक केवल इसी विचार पर लेखनीबद्ध करते रहे कि यह याग क्या है और यह मोक्ष का एक मानो देखो, मूलक कैसे बन सकता है? परमात्मा का चिन्तन करते रहे तो मुनिवरों! देखो, इस विषय पर बारह वर्षां तक अनुष्ठान करते रहे। तो मेरे प्यारे! देखो, वह अपने में सफलता को प्राप्त हुए। महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुणधती ने वहाँ से गमन किया कि यह तो आनुष्ठानिक है मानो वृक्षों का पंचांग पान करते थे। नाना प्रकार के कन्दमूल को पान करके अपने जीवन का निर्वाह कर रहे थे। ब्रह्मवर्चासि से मिलन करने के लिए उत्सुक बने हुए थे।

वैदिकता के ह्रास के कारण

तो मेरे पुत्रो! इसलिए मैने अपने पुत्र महानन्द जी से किसी काल में यह वर्णन किया कि इस प्रकार की गाथाएँ मानो वर्णित रहती हैं यह केवल वैदिक साहित्य को अपने महान पूर्वजों को मेरे पुत्रों! देखो, दूषित करने के लिए होती हैं। इसमें दूषितपना आता है। साहित्य समाप्त हो जाता है। और वैदिकता का ”ास हो जाता है जो मानो देखो, आनुष्ठानिक पुरुष हो देखो, लोमश मुनि महाराज और कागभुषुण्ड जी मानो देखो, एक ही गुरु के विद्यालय में अध्ययन करते थे। इसलिए दोनों का अध्ययन करने का माध्यम एक रहता था। एक ही विचारधारा में परिणत रहते थे तो मानो देखो, इसलिए मुनिवरों! देखो, यह चलन हो गया है कि यह काग प्रहे व्रताम् मानो प्रायः ऐसा नहीं है वो अपसरात का जो घटप है वह मानों सान्त्वना को प्राप्त हो जाता है।

तो परिणाम क्या मुनिवरों! देखो, महानन्द जी को मैने कई काल में ऐसा वर्णन कराया है कि हे पुत्र! ऐसा नहीं है मानो इस प्रकार इसे अब्रतो ब्रह्माः मेरे प्यारे! देखो, मैं वहीं जाना चाहता हूँ जहाँ हमने कल अपने विषय को त्यागने के लिए तत्पर रहे। विचार-विनिमय क्या मुनिवरों! देखो, कागभुषुण्ड जी और महर्षि लोमश, सोमकेतु

और विश्वश्रवा मेरे पुत्रों! देखो, सर्वत्र ऋषि मुनियों ने गमन करते हुए भारद्वाज आश्रम में भ्रमण करते हुए मुनिवरों! देखो, अपने आश्रमों में उन्होंने गमन किया और भ्रमण करते हुए मुनिवरों! देखो, वह अपनी स्थली पर आ गए। मानो देखो, विश्वश्रवा अपनी स्थली पर पहुँच गए और सोमकेतु मुनि महाराज उनके साथ-साथ चले गए। दोनों का विचार-विनिमय होने लगा कि अब मुझे क्या करना है? मेरे प्यारे! देखो, सोमकेतु ने कहा चलो हम कुछ और परामर्श करेंगे। विचार-विनिमय करेंगे कि हमें याग कर्म करने के लिए क्या, क्या क्रियाकलाप करना है।

परमात्मा की सृष्टि का निहारना

तो मेरे प्यारे! उनके विचारों में अनुष्ठान, वैदिक अनुष्ठान में परिणत हो गए वे दोनों और मुनिवरों! देखो, विश्वश्रवा ने बारह वर्षों तक वेद का अध्ययन किया और वेद का अध्ययन करते हुए मानो देखो, सूक्ष्म पान करते थे। सूक्ष्म आहार करते थे। मेरे प्यारे! चिन्तन विशेष करते थे। परमात्मा की सृष्टि को निहारते रहते थे। परन्तु निहारना ही हमारा कर्तव्य है। कोई भी मानव जो जिज्ञासु बनना चाहता है, परमात्मा के राष्ट्र में रमण करना चाहता है तो परमात्मा की सृष्टि को निहारना होगा। एक-एक परमाणुवाद को निहारना होगा। तो मेरे प्यारे! देखो, वह अपने में रत्त हो गए।

द्यौ गामी वैदिक रथ का स्वरूप

तो विश्वश्रवा और सोमकेतु मुनि महाराज दोनों ने सम्मिलित होकर के अनुष्ठान किया और वह अनुष्ठान करते करते मेरे प्यारे! वह उस दशा में पहुँच गए कि अपनी कुछ प्रवृत्तियों को लघुमस्तिष्क में ले जाते अपनी प्रवृत्तियों को जब लघु मस्तिष्क में ले गए तो वे सूक्ष्मवाद में रमण कर गए। मानो देखो, जैसे गति परमाणुवाद की हो रही है। ऐसी उन्होंने अपनी सूक्ष्म, सम रहस्यों की उन्होंने मुनिवरों! देखो, सूक्ष्म रूप बनाया और सूक्ष्मतम रहस्यों में गमन करके वह मानों देखो, परमाणुओं के क्षेत्र में चले गए और परमाणुओं का जो क्षेत्र था जैसे मानो देखो, यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में स्वाहा उच्चारण करता है। वह स्वाहा का आकार बन करके, वह अन्तरिक्ष में मानों देखो, परमाणुवाद में गति करता है और परमाणुओं में ऊर्जा प्रदान करता हुआ उन्हें मुनिवरों! देखो, वह समाधिष्ट में, वह लघुमस्तिष्क में बेटा! यह सब चयन होता हुआ दृष्टिपात आने लगा। मेरे प्यारे! इसी सूक्ष्मतम रहस्यों में तो गमन कर गए। जब गमन कर गए तो मुनिवरों! देखो, सोमकेतु ने यह दृष्टिपात किया कि रथं ब्रह्मे वाचाः रथं भविते सम्भवः दिव्यं ब्रह्माः मानो देखो, वह रथ की कल्पना करने लगे कि यह रथ क्या है?

मेरे प्यारे! देखो, वैदिक रथ में विद्यमान होकर के मानव गमन करता है, ऐसा वेद का मन्त्र कहता है। होताजन उसमें रमण करते हैं, उसमें गमन करते हैं वह रथ मुनिवरों! देखो, क्या है वो जो वाणी का रथ बनता है, वाणी के रथ में विद्यमान होकर के, शब्द के रथ में विद्यमान हो करके मेरे पुत्रो! देखो, प्रवृत्तियों का जो रथ बनता है, शब्द, अग्नि के तरंगों पर विद्यमान होकर के वह मेरे प्यारे! देखो, प्राण सूत्र में सूत्रित हो जाता है। वह प्राण सूत्र में सूत्रित हो रहा है। प्रत्येक मानव का शरीर मानव की प्रवृत्ति मानों देखो, बाह्य जगत यह मानो देखो, प्राण सूत्र में सूत्रित होता हुआ प्रायः दृष्टिपात आता रहता है।

जैसा साकल्य वैसा क्रियाकलाप

तो मेरे प्यारे! देखो, आज मैं विशेष विवेचना में न जाता हुआ केवल यह उच्चारण कर रहा था। मेरे पुत्रो! दोनों ने अनुष्ठान किया और वे अनुष्ठान करते करते मेरे पुत्रो! देखो, बारह वर्ष समाप्त हो गए। बारह वर्ष के पश्चात मेरे पुत्रो! देखो, वह बाह्य रचना में रत्त हो गए। तो मुनिवरों! देखो, उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार के साकल्यों को एकत्रित किया। ऐसा मुझे स्मरण है बेटा! विश्वश्रवा ने, सोमकेतु ने दोनों ने बेटा! देखो, भयंकर वनों में जाकर के साकल्य एकत्रित करने लगे। मेरे प्यारे! देखो, समिधाओं को एकत्रित करने लगे उन्होंने नाना प्रकार की समिधाओं को एकत्रित किया और एकत्रित करके मेरे पुत्रो! देखो, उसमें याग का चयनं ब्रहे व्रतां देवाः ऐसा वेद का ऋषि, वेद

का वाक् भी कहता है कि मानो जिस प्रकार का तुम क्रियाकलाप करना चाहते हो, जिस प्रकार को तुम अपने में लाना चाहते हो उसी प्रकार का तुम्हें साकल्य एकत्रित करना होगा।

मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने मानों लगभग साकल्य एकत्रित कर लिया और एकत्रित करके मुनिवरों! देखो, उन्होंने एक यज्ञशाला का निर्माण किया जब यज्ञशाला का निर्माण किया तो बेटा! देखो, जैसे वेद का मन्त्र, यज्ञशाला का प्रमाण देता है उसी प्रकार से यज्ञशाला का निर्माण किया। निर्माण करके मानो देखो, उन्होंने आधिदैविक आधिभौतिक आध्यात्मिक यह तीन प्रकार के तापों का मानों उन्होंने एक प्रकार बनाया और सम्भूति ब्रह्मवाचो मुनिवरों! देखो, यज्ञशाला का निर्माण करते हुए मेरे पुत्रो! देखो, उसमें यज्ञशाला प्रतो अवसा अग्न्याधान करने से पूर्व उन्होंने सृष्टि का क्रम बनाया। सृष्टि का क्रम कैसा मानों मेखला में एक मेखला में जल का प्रोक्षण करना है। जल की प्रतिभा में रत्त रहना।

बाह्य जगत की अनुकूलता

मेरे प्यारे! जब याग प्रारम्भ हो गया। तो ऋषि मुनियों ने यह मानों देखो, एक सूचक प्राप्त हुआ कि महर्षि विश्वश्रवा और महर्षि सोमकेतु महाराज भयंकर वनों में याग कर रहे हैं। चलों उनके याग में मानों सम्मिलित होना है। तो मुनिवरों! देखो, महर्षि लोमश जी और महर्षि कागभुषुण्ड जी दोनों ने अपने आश्रम से गमन किया और गमन करते हुए मेरे पुत्रो! वे यज्ञशाला में पहुँचे।

तो मुनिवरों! देखो, याग हो रहा है। अग्न्याधान, प्रातः काल में प्रारम्भ किया, जब प्रारम्भ किया तो मुनिवरों! देखो, कागभुषुण्ड जी ने कहा हे ऋषिवर! हे विश्वश्रवा उद्यालक! तुम याग क्यों कर रहे हो? उन्होंने कहा कि प्रभु! हम याग इसलिए कर रहे हैं क्योंकि हम बाह्य जगत को अपने अनुकूल बनाना चाहते हैं। बाह्यजगत जब हमारा अनुकूल हो जाता है तो आन्तरिक जगत भी अनुकूल हो जाता है। और दोनों की अनुकूलता होने पर ही हमारा व्यापिकवाद बनता है। यदि बाह्य जगत हमारा संकीर्ण रहता है, आन्तरिक जगत में व्यापिकवाद नहीं रह पाता है परन्तु दोनां को व्यापिक बनाना चाहते हैं। क्योंकि व्यापिकवाद में धर्म रहता है। व्यापिकवाद में याग रहता है, और व्यापिकता में ही मानव में दर्शन निहित रहता है।

अग्नि स्वरूप साकल्य

तो मेरे पुत्रो! जब ऋषि ने यह वाक् कहा कि मानों दर्शन इतना ऊर्ध्वा में है तो मुनिवरों! देखो, कागभुषुण्ड जी ने पुनः प्रश्न किया कि महाराज! तुम ये साकल्य क्यों अग्नि में हूत कर रहे हो? उन्होंने कहा कि हे भगवन! जितना साकल्य है वो सब अग्नि स्वरूप माना गया है मानों अपने में अपनेपन को ही प्राप्त हो रहा है इसमें हमारा कोई दोषारोपण नहीं है। कागभुषुण्ड जी मौन हो गए। विचारने लगे कि वाक् तो बड़ा ही विचित्र है। मानो देखो, ये जितना भी साकल्य है, यह सब अग्नि स्वरूप है। क्या, ऋषिवर! तुम इसको अग्निस्वरूप कैसे स्वीकार करते हो? उन्होंने कहा कि प्रभु! इसलिए क्योंकि यह अग्नि के तत्त्वों का मानो एक नृत्त है और मानो यह जल से सुगठित हो रहा है, जिसे हम आपो कहते हैं और मानो देखो, उस आपो में भी अग्निस्वरूप विद्यमान है परन्तु देखो, वह उससे सुगठित है और देखो, ये जो पृथ्वी के परमाणु हैं जो मानों इनको स्थूल रूप में दर्शा रहे हैं यह पृथ्वी के परमाणु भी अग्निस्वरूप माने गए हैं यदि अग्नि नहीं होगी तो उसके परमाणुओं में गति नहीं आ सकती है। मानों उसमें स्थूल रूप भी नहीं आएगा। इसलिए मानों देखो, यह सम्मिलित होकर के, सुगठित होकर के एक सूत्र में पिरोए होने के नाते प्राणस्वरूप बन करके और यह अग्नि प्राणस्वरूप है। परन्तु यह जितना साकल्य सब प्राण शक्ति को उद्बुत करने वाला है। इसलिए अपने में अपने को प्राप्त हो रहा है।

देवताओं की हवि

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि चकित हो गया। ऋषि ने कहा कि हे प्रभु! वाक् तो यथार्थ है परन्तु देखो, हम यह

और जानना चाहते हैं कि तुम अग्न्याधान किससे कर रहे हो? उन्होंने कहा कि अग्न्याधान मानो देखो, समिधा से कर रहे हैं, समिधा भी अग्निस्वरूप माना गई है। यदि मानो देखो, सूर्य की किरणें अग्नि बन करके मानो देखो, विद्युत बनकर के यदि इनको नहीं तपा सकती तो समिधा नहीं बन पाएगी। मानो देखो, वह अपने में समिधा नहीं कहलाती। इसलिए देखो, सूर्य तपा रहा है, चन्द्रमा रस दे रहा है, अग्नि उसमें प्रवेश कर रही है। मानो देखो, जब पृथ्वी के परमाणुओं में पफल, पफूल इत्यादि आ जाते हैं वह मानो देखो, अग्नि स्वरूप बन करके देखो, देवताओं की हवि बन रही है।

आत्मा का आसन

मेरे प्यारे! देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार, यज्ञ के स्वरूप का वर्णन किया तो मुनिवरों! देखो, कागभुषुण्ड जी और लोमश मुनि दोनों मौन हो गए। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा-लोमश जी बोले कि हे प्रभु! यह जो तुम मानो याग में विद्यमान हो, तुम्हारा आसन क्या है? याग में आसन भी तो होना चाहिए? उन्होंने कहा-प्रभु! मेरा जो आसन है मानो वह मेरा आसन, मेरी माँ पृथ्वी है। मेरी प्यारी आसनो ब्रह्मवाचाः इसे आसन नहीं कहना चाहिए। यह मेरी माता वसुन्धरा है। ये पृथ्वी है, पृथ्वी मुझे अपनी गोद में धारण कर रही है और मानो उसी के आँगन में मैं आनन्दित होकर के और अग्नि को प्रदीप्त करने के लिए तत्पर हो रहा हूँ। उन्होंने कहा आसन का प्रश्न है हमारा, पृथ्वी का तो प्रश्न नहीं है। उन्होंने कहा पृथ्वी ही तो आसन माना गया है। जब मानो देखो, मानव व्यापिकवाद में परिणत होता है जब आत्मा का आत्मा से मिलान होता है, अथवा आत्मा अपने को यज्ञमयी स्वरूप स्वीकार कर लेती है। मानो देखो, यह जो प्रकृति है। प्रकृति का एक शब्द पृथ्वी भी मानी गई है मानो देखो, वही तो आत्मा का आसन है। और आनन्द के लिए मानो देखो, आनन्द रूपी परमात्मा को, चैतन्य देव को चेतना का ओढ़न बनाकर के मानो वह मोक्ष में रत् रहना चाहता है।

आत्म कल्याण के लिए याग

तो मेरे प्यारे! देखो, इस प्रकार जब ऋषि को मानो देखो, प्रत्येक आभा में उसे उद्धृत कर दिया तो वह मौन हो गए। उन्होंने कहा-कि प्रभु! वाक् तो तुम्हारा यथार्थ है मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने, याग पुनः प्रारम्भ कर दिया। वे मुनिवरों! देखो, सोमकेतु मुनि के द्वार पर पहुँचे। सोमकेतु मुनि से कहा कि प्रभु! हमें याग की प्रतिक्रियाओं का वर्णन कराइए? कि प्रभु! यह कौन-सा याग कर रहे हैं आप? उन्होंने कहा-हम मानो एक याग कर रहे हैं। इनमें कौन-सा प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। याग तो याग होता है। याग में कौन-सा का शब्द नहीं होता? उन्होंने कहा-प्रभु! कौन-सा तो नहीं होता, परन्तु जैसे भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का चयन वैदिक साहित्य वर्णन कराता है, उन्होंने कहा-वैदिक साहित्य मानों उनके लिए वर्णन करता है जो राष्ट्रीय यागों में परिणत रहते हैं। मानो देखो, यहाँ तो आत्मा को आत्मा में, आत्मा का हूत परमात्मा में प्रदान कर रहे हैं। जैसे मानों देखो, अग्न्याधान होकर के अग्नि के स्वरूप में मानों देखो, अग्नि को ही दृष्टिपात करते हैं। इसी प्रकार चेतना में चेतना को दृष्टिपात कर रहे हैं। तो यह आत्म कल्याण के लिए याग हो रहा है। मानो देखो, हम कौन-सी वृत्तियों में याग परिणत नहीं कर रहे हैं।

मेरे प्यारे! देखो, कागभुषुण्ड जी ने कहा कि हे भगवन! महर्षि लोमश मुनि को आप इस प्रकार मानो देखो, शब्दों में मौन न कीजिए, नाना प्रकार के याग होते हैं उनका वर्णन कीजिए। मानो देखो, एक अश्वमेध याग होता है एक अजामेघ याग होता है एक मानो देखो, वाजपेयी याग होता है एक मानो विष्णु याग होता है। एक मानो गोमेघयाग होता है एक अश्वाकृतियों में याग होते हैं ये भिन्न भिन्न प्रकार के यागों का चयन वैदिक साहित्य ने किया है। आप उनका वर्णन क्यों नहीं करा रहे हैं?

विष्णु याग

मेरे प्यारे! देखो, सोमकेतु ने कहा ऋषिवर! तुमने प्रश्न किया है मानो बोलो कौन से याग का वर्णन चाहते

थे? उन्होंने कहा-सबसे प्रथम तो हम यह चाहते हैं तुम कौन-सा याग कर रहे हो? उन्होंने कहा-कि हम अपने में मानों सामूहिक याग कर रहे हैं समूह और धर्म, जो एक एक मानव को मानो सुगठित कराता है वो याग कर रहे हैं। उन्होंने कहा-प्रियतम, मानों अब हम विष्णुयाग जानना चाहते हैं? विष्णुयाग किसे कहते हैं? उन्होंने कहा-विष्णुयाग उसे कहते हैं मानो जो परमपिता परमात्मा के आश्रित होकर के और राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिए, प्रजा को सुखद देने के लिए, याग करता है वह मानो देखो, विष्णुयाग कहलाता है।

गोमेघ याग

उन्होंने कहा-गोमेघयाग कौन-सा है? उन्होंने कहा-गोमेघयाग मानो देखो, विद्या को कहते हैं, जो विद्या अध्ययन कराता है, आचार्यजनों के चरणों में विद्यमान होकर के ब्रह्मचारी अपने में अध्ययन कर रहा है। मानो देखो, वह गो को प्रकाश में पहुँचा रहे हैं। गो को मानों जो प्रकाश में ले जाता है वो आचार्य गो मेध याग करा रहा है, वह गो मेध याग की प्रतिभा में ले जा रहा है। सुगन्धि दे रहा है। परन्तु देखो, आचार्य इतना सुसज्जित होना चाहिए, आचार्य इतना चरित्र में महान होना चाहिए। जिससे उसके चरित्र की सुगन्धि उसके विचारों की सुगन्धि आचार्य को मानो देखो, ब्रह्मचारियों को प्रभावित कर सके उसकी अन्तरात्मा में मानों उसकी प्रतिभा का स्रोत उसमें प्रवेश हो जाए ऐसा आचार्य मानों देखो, गोमेघयाग करता है।

अजामेघ याग

मेरे पुत्रो! जब सोमकेतु ने ऐसा कहा तो उस समय महर्षि कागभुषुण्ड जी ने कहा प्रभु! चलो, गोमेघयाग तो यह हुआ, परन्तु अजामेघ याग किसे कहते हैं? उन्होंने कहा अजामेघ याग देखो, अजा पृथ्वी को कहते हैं। अजा नाम वैज्ञानिकों को भी कहते हैं जो मानो देखो, अजा, पृथ्वी के ऊपर अन्वेषण कर रहा है, विचार कर रहा है। इसके गर्भ में प्रवेश कर रहा है। वो अजामेघ याग है जो इसमें अजा होना चाहता है। परन्तु अजा के भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वरूप माने गए हैं। जैसे मानो देखो, अजा कहते हैं जो विद्या का अध्ययन करता हुआ किसी से विजय न हो, वह बुद्धिमान मानो देखो, अजामेघ याग कर रहा है। तार्किक सिद्धांत के द्वारा, तार्किक स्रोतों के द्वारा वह याग करता है मानों वह किसी से अजा नहीं हो रहा है।

इसी के स्वरूप में जब राजा अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाता है। राजा अपने राष्ट्र में मानो देखो, प्रजा को अस्सुते राजा मानो देखो, अपने विचारों का याग करता है। वह किसी राजा से मानो आक्रमण करने के पश्चात भी, दूसरा राष्ट्र मानो आक्रमण करता है तो वह अजय रहता है। उसको कोई विजय नहीं कर सकता। मानो देखो, विजय कौन होता है जो हीन प्राणी होता है वो विजय होता रहता है। जो मानो अपने स्वार्थ परता में, अपनी लोलुपता में लगा रहता है वो सदैव मानो देखो, अजा वह देखो, विजयी होता रहता है और जो निःस्वार्थ रहता है। जो निःस्वार्थ मानो प्रजा के मनोबल को ऊँचा बनाता है, प्रजा के महान रूपों को ऊँचा बनाने में लगा हुआ है, अपने में त्याग और तपस्या में परिणत रहता है, परमात्मा का चिन्तन करके विश्वसनीय रहता है याग कर्मों में परिणत रहता है। जानो, मुनिवरों! देखो, वह अजामेघ याग कर रहा है और संसार में उसे कोई विजय नहीं कर सकता है।

तो मेरे प्यारे! जैसे मानो जितेन्द्रीय होता है और वह जितेन्द्रीय बन करके जैसे मेरे पुत्रो! जितेन्द्रीय होती है परन्तु देखो, जब वह गृह में प्रवेश करती है तो अजामेघ याग करती है। अपने पति के द्वार पर विद्यमान होकर के अजामेघ याग करती है और वह कहती है कि मैं ऐसी संतान को जन्म देना चाहती हूँ जिससे वो किसी से विजय न हो सके। वह अजय नामक याग करके प्रभु का चिन्तन करके ऐसी सन्तान को जन्म देती है जो जितेन्द्रीय बन कर त्याग और तपस्या में परिणत होकर के वह मेरे प्यारे! पुत्र किसी के लिए मानो किसी से अजयता को, अमृतम सदैव अजय रहता है। वह मुनिवरों! देखो, ह्रासता को प्राप्त नहीं होता। तो विचार-विनिमय क्या वेद के ऋषि

ने जब इस प्रकार उद्धृत उदाहरण देने प्रारम्भ किए तो बेटा! ऋषिवर स्वीकार करते रहे।

अग्निष्टोम

तो मेरे प्यारे! उन्होंने कहा कि महाराज! यह हमने स्वीकार कर लिया। परन्तु अग्निष्टोम याग किसे कहते हैं। उन्होंने कहा अग्निष्टोम याग मेरे प्यारे! उसे कहते हैं जो वृष्टियाग करना जानता है। वृष्टियाग करना ही मानो देखो, अग्निष्टोम याग की एक शाखा कहलाई जाती है। जब वो मानो देखो, वृष्टियाग करता है। वृष्टियाग करने वाला जो पुरुष होता है वह तपस्या करता है, अनुष्ठान करता है। वेद के मन्त्रों को चुनौती प्रदान करता है। परमपिता परमात्मा की अनुपम विद्या का अध्ययन करता है और अध्ययन करता हुआ वह त्याग में परिणत होता है और त्याग में परिणत होकर के मानो देखो, वह गान रूपों में, गान गाता है। वाजपेयी, बुद्धिमान वाजपेयी गान गा रहा है। वाजपेयी गान को कहते हैं जब वह गान गाता रहता है तो उसके मस्तिष्क में ललाहट आ जाती है मानो देखो, उसमें अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। वाणी एक अग्नि का स्वरूप बन जाता है। मानों देखो, हमारे ऋषि मुनियों ने ८५-८५ वर्षों तक इसका अभ्यास किया और मानो देखो, ललाहट मस्तिष्क में देखो, इसको लाने का प्रयास किया और जैसे अग्नि का प्रकाश हुआ मानो देखो, उसी स्वरूप में वह अग्नि प्रदीप्त हो जाती है मस्तिष्क में। परन्तु जब मानों देखो, वह गान रूपों में गान गाने लगता है तो मानो देखो, मेघों में उसके गानों की प्रतिभा अन्तरिक्ष में चली जाती है और अन्तरिक्ष में प्रवेश करके मानो देखो, जब वह यहाँ याग करता है, उन्हीं साकल्यों को, उन्हीं औषधियों को एकत्रित करके जब वह याग करता है, अग्नि के द्वारा तो, अग्नि, देवताओं का मुख बनकर के उन्हीं तरंगों को परिणत करा देती है जिसमें मानो देखो, जल तत्त्व प्रधान होते हैं। मेघों में परिणत होकर के वह विद्युत के द्वारा, वह मेघों की उत्पत्ति होकर के समुद्रों से समन्वय होकर के, चन्द्रमा की कांति से समन्वय होकर के मेरे प्यारे! देखो, समय-समय पर वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है।

वाजपेयी याग

परिणाम क्या, मानो यहाँ मुनिवरों! देखो, वाजपेयी याग का वर्णन है। बलं ब्रह्मः वाचो देवाः वेद का ऋषि कहता है, गम्भीर अध्ययन करता हुआ उस समय देखो, यहाँ गऊ के मानों देखो, बछड़े की बलि का यहाँ वर्णन आता है। गऊ के बछड़े की बलि का वाजपेयी याग में वर्णन आता रहता है। मेरे पुत्रो! देखो, वह बलि अमृतं ब्रह्माः मानव को अर्पित करने को बलि कहते हैं, अपने परिश्रम का नामोकरण बलि कहा जाता है। बलि का अभिप्राय यह है कि जो मानो देखो, अपने को न्यौछावर कर देता है। इसलिए गऊ बछड़ा तन्मय होकर के कृषि के गर्भ को मानो, देखो, चमड़ी को उधे़ड़ करके और उसके गर्भ में बीज की स्थापना करके, नाना प्रकार के अन्नाद को उत्पन्न कर देता है।

तो मेरे प्यारे! देखो, इस प्रकार हमारे यहाँ वाजपेयी यागों का वर्णन आता रहा है। तो विचार-विनिमय क्या, आज मैं देखो, इस सम्बन्ध में विशेष विवेचना न देता हुआ केवल क्या मुनिवरों! देखो, कागभुषुण्ड जी को और देखो, सोमकेतु मुनि महाराज की यह चर्चाएँ हो रही थीं, चर्चाएँ होते ही उन्होंने कहा-धन्य है, प्रभु! हमने आपको कुछ मानों देखो, परीक्षा के रूप में नहीं केवल जानकारी के रूप में यह याग कर रहे हैं? मेरे प्यारे! देखो, वह जो राजा ब्रह्मे अप्रतं देवाः प्रभु अस्सुताहम् जो यज्ञमान बना हुआ था विश्वश्रवा उसके समीप पुनः पहुँचे और उन्होंने कहा यज्ञो भवाः तं ब्रह्मा। हे भगवन! तुम जो यह याग कर रहे हो और इसमें मानो देखो, तुमने जो जल का प्रोक्षण किया हैं इसका याग से क्या सम्बन्ध है?

उन्होंने कहा याग किसे कहते हैं? याग कहते हैं जो पञ्चमहाभौतिक तत्त्वों का एक मिलन कराता है उसका नाम याग कहा जाता है। जैसे मानो देखो, याग में यज्ञं भविते देवाहं हिरण्यं रथाः जैसे आपं ब्रह्मवाचो देवाः मानो देखो, यह याग कहलाता है। तुम्हें यह प्रतीत है कि परमपिता परमात्मा ने जब सृष्टि का प्रारम्भ किया था तो सृष्टि

के प्रारम्भ में मानो देखो, माता के गर्भाशय का निर्माण किया। जब माता के गर्भाशय का निर्माण किया तो उसमें एकमेखला का निर्माण किया। मानो मेखला में जल रहता है और जब मानो देखो, शिशु का प्रवेश होता है.............शेष अनुपलब्ध कैथवाड़ी, जिला मेरठ

८ शिक्षा अध्ययन ३० १२ १९८५

देखो, मुनिवरों! आज तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहारी वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा रणी माने गएं हैं। जो भी मानव उसका वरण कर लेता है, प्रायः वह उसी को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए हमें परमपिता परमात्मा के गुणों का गुणवादन करना चाहिए क्योंकि अग्नि के समीप उसका ताप और तेज मानव को अपनी प्रतिभा का वर्णन करा देता है।

ब्रह्माग्नि

परन्तु जहाँ यह सम्बन्ध ब्रह्मग्नि का आता है। ब्रह्म-अग्नि किसे कहते हैं? ब्रह्म-अग्नि उसे कहते हैं, जो इस ब्रह्माण्ड को प्रकाशित कर रही है। वह एक सूत्र कहलाती है। और यह जो ब्रह्माण्ड है। नाना निहारिकाओं वाला जो जगत है। इस संसार का एक सूत्र बना हुआ है। जिस प्रकार माता के गर्भ स्थल में जब शिशु विद्यमान होता है। तो माता उसका सूत्र बनकर के रहती है। उसी में सूत्रित रहता है। और जो निर्माण वेत्ता है। जो निर्माण कर रहा है। मेरी भोली माँ उससे प्रायः वंचित रहती हैं, यह नहीं जानती माता कि कौन निर्माण कर रहा है? कौन-सी वस्तु का निर्माण हो रहा है? तो इससे हमें यह सिद्ध होता है, कि वह जो मेरा देव परमपिता परमात्मा जो विश्व कर्मा है, जो विश्व को धारण कर रहा है, वही माता के गर्भ स्थल में हम जैसे शिशुओं का प्राण निर्माण करता रहता है। हे भोली माँ तुझे ज्ञान नहीं है कि तेरे गर्भ में कौन निर्माण वेत्ता है। एक एक अणु और परमाणु को सुगठित करने वाला, उसे ब्रह्म अग्नि में पिरो देता हैं। उसे अपने में पिरो लेता है।

गर्भस्थ शिशु का विज्ञान

कैसा मेरे प्यारे प्रभु का यह विज्ञान है। जब माता के गर्भ स्थल में एक बिन्दु का प्रवेश होते ही सर्वत्र देवता उस बिन्दुमयी, आपोमयी ज्योति की रक्षा करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। यह पृथ्वी गुरूतव देने लगती है। और जल आपोमयी शीतल बनाने लगता हैं, अग्नि उसे ऊष्णा बनाने लगती है। और वायु उसे प्राण देता है। सूर्य उसे तेजोमयी बना देता है। और चन्द्रमा अमृत को बहाने लगता है। और यह जो लोक लोकान्तरों की माला है नाना तारा मण्डलों की माला बन करके उस बालक के लघु मस्तिष्क में परिणित हो जाती है। वाह रे मेरे प्रभु! तू कितना विज्ञानमयी है। आज तेरे विज्ञान की कोई सीमा नहीं। सीमा में तेरे विज्ञान को नहीं ला सकते। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के वर्तमान के काल तक नाना वैज्ञानिक हुए हैं। परन्तु कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ जो उस महामना देव के विज्ञानको सीमाबद्ध कर सके। उसका ज्ञान और विज्ञान नितान्त रहता है। तो मेरे प्यारे! विचार आता है हे ममतव! हे तेजोमयी! तू प्रायः हमें धारण करने वाली है। वेद उस समय माता को वसुन्धरा के रूप में परिणित कर रहा है। परन्तु आज मैं प्रभु के विज्ञान में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ।

भगवान राम का विद्याध्ययन

इससे पूर्व काल में हम भगवान राम की कुछ चर्चाएं कर रहे थे भगवान राम की वह विशेषताएँ जो प्रायः उनके बाल्य काल में मानो जो मनोनीतिता में प्रायः प्रकट होती रहती थी। विद्यालय में माता ब्रह्मचारी को महान बनाने का उपदेश दे रही है। नाना प्रकार का क्रियाकलाप है, उस क्रियाकलाप में उसको परिणित कर रही हैं। जब भगवान राम और लक्ष्मण और गार्गपथ्य ब्रह्मचारी और भी नाना संग में ब्रह्मचारी ये जब ये सर्वत्र ऋषि मुनियों का भ्रमण करके, माता अरून्धती के समीप आ पहुंचे, माता अरून्धती ने कहा ब्रह्म वाचो देवाः ब्रह्मवरुण हे ब्रह्मचारी! तुमने कहाँ कहाँ भ्रमण किया तो एक की कण्ठ से चारों ब्रह्मचारियों ने कहा कि हम राजाओं के यहाँ भी पहुँचे और

ऋषि मुनियों के समीप हम विज्ञान की धाराओं में भी प्रायः रमण करते रहते हैं। हमें बहुत-सा अनुभव हुआ है। जीवन की धाराओं का अनुभव होना ही हमारे जीवन की एक सार्थकता कहलाती है। यह सांयकाल का समय था रात्रि के काल में बेटा! न्यौदा में से कुछ मन्त्रों का उच्चारण कराते हुए अरून्धती अपने कक्ष में और वशिष्ठ मुनि महाराज अपने कक्ष में विद्यमान हो गये। अगला दिवस जो प्रातःकाल का आया। अपनी क्रियाओं से ब्रह्मचारी निवृत्त हो करके माता अरून्धती वशिष्ठ और महर्षि विश्वामित्र विद्यालय में विद्यमान हैं। माता अरून्धती ने ब्रह्मचारियों की पंक्ति लगायी यागाम् ब्रह्म वाचो देवाः और याग करने के लिए तत्पर हो गये।

परन्तु जैसे उन्होंने सन्धि के काल में जैसे प्रातःकाल और रात्रि की दोनों की सन्धि होती है। ऐसी ही ब्रह्मचारियों ने अपने कक्ष में उस सन्धि काल में सन्ध्या उपासना करने के पश्चात् अग्नि के समीप जा करके अग्नि होत्र करने लगे। एक ब्रह्मचारी यज्ञमान बन गया और होता उद्गाता अध्वर्यु बन गये। याग प्रारम्भ होने लगा माता अरून्धती की अध्यक्षता में वशिष्ठ मुनि के गुरूतव में, विश्वामित्र भी उस पंक्ति में विद्यमान हैं। विचार चल रहा है। याग के पश्चात् मेरे पुत्रों! ब्रह्मचारियों का कुछ विचार होता है। हमारे यहाँ एक परम्परा मानी गई है। ब्रह्मचारी प्रातःकालीन अग्नि का चयन करके आर्चाय से कुछ प्रश्न करता है। और प्रश्नों का उत्तर आचार्य जन देते हैं। जैसे माता अपने पुत्र को लोरियों का पान कराती हुई, उसके श्रोत्रों में कुछ न कुछ उच्चारण करती रहती है। अपने उद्गार देती रहती है। बालक का कण-कण पवित्र बनता रहता है। माता के उन उद्गारों से बाल्य की प्रतिभा का जन्म होता है। परन्तु विद्यालय में क्रियात्मक में प्रवेश वृत्तित हो जाता है।

वाजपेयी याग

राम, लक्ष्मण, गारपथ्य, सुकेता, श्वेतकेतु, ब्रह्मचारी कवन्धि भी शिक्षा अध्ययन करते थे। मेरे पुत्रों! ब्रह्मचारी कवन्धि भगवान राम, लक्ष्मण और इन चारों ब्रह्मचारियों ने उपस्थित होकर के यह कहा भगवान यह वाजपेयी याग किसे कहते है? क्योंकि नाना प्रकार के यागों का जहाँ वर्णन आता है, वहाँ वैदिक साहित्य में वाजपेयी याग का भी वर्णन आता है। तो भगवान राम के शब्दों को पान करने वाले ऋषिवर वशिष्ठ ने कहा हे राम! तुम वाजपेयी याग को क्यों जानना चाहते हो? उन्होंने कहा-प्रभु! हम इससे पूर्व जब रात्रि समाप्त हुई तो न्यौदा में से कुछ मन्त्रों का अध्ययन कर रहे थे और मन्त्र यह कह रहे थे वाचन्नमः वाचो वृतम् यागाः यागाम् भवत्ति देवाः यह नौदा में से एक मन्त्र है। और यह मन्त्र यह कहता है। कि राजा और ब्रह्मचारियों को वाजपेयी याग करना चाहिए तो भगवान! यह वाजपेयी याग क्या है। तो महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि याग को कहते है अग्निहोत्र को, याग कहते हैं। शुभ कर्म को, परन्तु रहा वाजपेयी याग। प्रजा के सुख के लिए, सुखद अनुभव करने के लिए अभ्युदानम् ब्रहे सुखी और आनन्दवत् बनाने के लिए याग करते रहते हैं। इसीलिए वाजपेयी याग का अभिप्राय वाचा वाचन्नमः वाचन्नमम् ब्रह्म वाचा जिससे वाणी पवित्र हो जाएं उसको हमारे यहाँ वाचा कहते हैं। जिससे हमारे समय का उपयोग हो जाएं और हम याग करते हुए अग्नि का चयन करते रहें। अपनी वाणी को पवित्र बनाते रहें। क्योंकि वाणी को पवित्र बनाना राष्ट्र और समाज के लिए बड़ा महान महत्व का माना गया है। मेरी प्यारी माता को प्रायः वाजपेयी याग करना चाहिए वह बालक को जब लोरियों का पान कराती हो तो वह सत्यवादी ब्रह्मचारी को बनाना है। यदि माता सत्यवादी पुत्र को नहीं बना सकती तो मानो देखो, यह माता की सुक्ष्मता होती है। यह उसकी धृष्टता का द्यौतक है।

बलि की व्याख्या : बलि का अभिप्राय है पुरूषार्थ करना

परन्तु महर्षि वशिष्ठ ने कहा राम! मेरे विचार में एक पक्ष तो यह कहता है, वाजपेयी याग का, और द्वितीय जो पक्ष है, वाजपेयी याग का, यह कहता है कि मेघों से हम जब याग करते है, तो याग को मानो देखो, हिरणाक्ष ले जाता है। और हिरणाक्ष उस याग को, मेघ मण्डल को परिणित करा देता है। या वृत्रासुर को उच्चारण कर दीजिए। वह वृत्रासुर में चला जाता है। और वृत्रासुर उसकी धीमी धीमी याग की वृष्टि कर देता हैं सोम की वृष्टि

कर देता है और वह जो सोम की वृष्टि है, वहाँ, गऊ के बछड़े और बैल की बलि का वर्णन आता है। यह वर्णन शैली हमारे यहा परम्परागतों से आयी। जहाँ बलि का वर्णन है, वहाँ बलि के बहुत से अभिप्राय माने गएं है, मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में बलि के नाना रूप नाना गुरूतव प्रकट किए थे। बलि का अभिप्राय यह है कि जो सोम की वृष्टि हुई है, उसको हम परिश्रम से, अपने पुरूषार्थ से उस सोम का सदुपयोग करते हैं। और वह सोम का जब सदुपयोग हो जाएगा तो मानो देखो, यहाँ बलि का वर्णन है। बलि का अभिप्राय केवल है, पुरूषार्थ करना हैं। पुरूषार्थ का नामोकरण बलि कहा जाता है।

महर्षि वशिष्ठ द्वारा याग की महिमा की विवेचना

बहुत पुरातन काल हुआ मेरे पुत्र महानन्द जी ने बहुत-सी वार्त्ताएँ मुझे प्रकट करायी आज मुझे उन वाक्यों में तो जाना नहीं है। परन्तु जो त्रेता के काल में महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, माता अरून्धति प्रायः यह विवेचना करती रहती। और विवेचना का अभिप्राय केवल यह बना, सोम कहते है वृष्टि को। याग कहते हैं, प्रतिका को। जो हम याग करते हैं, उसका सुगन्ध रूप बन करके ही आता है। प्रजन्य में उससे वृष्टि होती है। और वह वृष्टि ही नाना प्रकार के व्यंजनों को जन्म देती है। नाना वनस्पतियाँ उसी से पनप रही है। तो विचार विनिमय क्या आख्याकियाएँ हैं, यह विचार है, याग का कर्म है। याग भी होना चाहिए और यह राजा और राष्ट्र का कर्त्तव्य है। ब्राह्मण, ऊँचे पुरूषों का यह कर्त्तव्य है कि इस प्रकार के यागों का चयन करें और साधारण समाज में इस प्रकारके उद्योगों का प्रसार करता चला जाएं जिससे और समाज में एक आनन्दवत छा जाएं। कर्त्तव्य का पालन करता रहे प्राणी। जब तक कर्त्तव्यवादी नहीं बनेगा तब तक जीवन नहीं बनता। इसी प्रकार नाना प्रकार के कर्मों की जो विचित्रताएं है वह बड़ी महान और वह गहन हमारे यहाँ साहित्यों में बेटा! सिद्ध हुई और यह आया है कि उनको हमें विचार विनिमय करना है। मेरे पुत्रों! जब वशिष्ठ मुनि महाराज ने याग की जो विवेचना की तो मानो देखो, उसमें दोनों के याग होने चाहिए यज्ञम् भवितः देवाः वे यज्ञशालाओं में विद्यमान होकर के यज्ञमान पत्नी से कहता है, देवी! आओ, हम अपनी अन्तर्भावनाओं को द्यौ-लोक में पहुँचाना चाहते हैं। महर्षि वैशम्पायन ने इस वेदमन्त्र का अध्ययन किया था कि यज्ञमान का चित्र बन करके द्यौ-लोक में जाता है। यज्ञमान कहता है, जिज्ञाम आओ, हम देव-याग कर रहे है। हम वाजपेयी याग करते हुए अपनी अन्तर्भावनाओं को दिव्य लोक में पहुँचाना चाहते हैं। हम दिव्यता में उसको परिणित करना चाहते है। यज्ञमान का अन्तर्हृदय जब तक पवित्र नहीं होता मानो वह पवित्रता कह तो वायु मण्डल का निर्माण और याग की प्रतिभा को जन्म देती है। वही तो गृह को ऊँचा बनाती हैं गृह में शुद्ध पवित्रता के परमाणु जब वेदमन्त्र की धारा में गति करते हैं, वह वायु मण्डल में प्रवेश करते हुए यज्ञमान के हृदय का शोधन करते रहते है। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज इस प्रकार की विवेचना करते रहते है। विवेचनाएँ समाप्त हो गयीं और देखो, ब्रह्मचारी अपने-अपने कक्ष में जा पहुँचे। ब्रह्मचारी जब अपने-अपने कक्ष में जा पहुँचे। तो मानो सोमकाल के समय एक ब्रह्मचारियों का समूह विद्यमान हुआ।

भगवान राम द्वारा महाराजा दलीप का वर्णन

ब्रह्मचारी ने कहा मानो यज्ञदत्त ने कहा है हे साधो! हे भरत! आज आचार्य ने हमें जो विवेचनाएँ प्रकट की हैं। वह तो मैंने कई काल में योगियों से चर्चाएँ की थी। मेरे पिता योगेश्वर थे और वे इन्हीं धाराओं को बुद्ध मण्डल में क्या शनि में ले जाते थे और शनि प्राणियों का यज्ञ के द्वारा दर्शन करते थे। ब्रह्मचारी गार्गेपथ्य ने कहा कि मेरे पिता थे जब मैं माता की लोरियों का पान करता रहा, पिता अंग-संग रहते, वह शिक्षा देते रहते। तो मेरे पिता, वह अपने पूर्वजों के जो शब्दों के साथ चित्र गतियाँ करते उनको दिग्दर्शन करते रहते थे। बड़ा विचित्र बेटा! ब्रह्मचारियों का समूह था, उसमें अपने-अपने अनुभव की और जो श्रवण की हुई चर्चा थी,उसको वह चर्चा में ला रहे थे। भगवान राम ने कहा कि मैंने अपने महापिता राजा दलीप की गाथा को श्रवण किया। मेरे पिता का नाम दलीप था,

वशिष्ट ऋषि मुनियों के कथनानुसार उन्होंने राज्य का त्याग कर दिया और नन्दनी की सेवा करने लगे। नन्दनी के विचार और अपने विचारों का तारतम्य मिलाते। मानो सिंहराज आता तो उसके विचारों में अपने विचारों की झड़ी लगाते रहते थे। हमारे पूर्वज हमारे महापिता कितने वैज्ञानिक और कितने आत्मीयता मे रत्त रहे। महाराज दलीप के जीवन में यह गाथा आती है। भगवान राम ने कहा कि जब नन्दनी हिमालय की कन्दराओं में पहुँची तो वहाँ झरना झर रहा था, जल का स्रोत बह रहा था, वहाँ नन्दनी जल का पान करने लगी। हमारे महापिता उस झरती हुई जल धारा को दृष्टिपात करने लगे। इतने में सिंहराज ने आकर के नन्दनी पर आक्रमण किया महाराजा दलीप ने दृष्टिपात किया यह क्या हो रहा है। पूर्वज ने कहा हे सिंहराज! यह नन्दनी मेरी पूज्य है। इससे पूर्व तू मेरे प्राणों को हनन कर सकता है। नन्दनी के प्राण उसके पश्चात् हनन हो सकते हैं। बेटा! देखो, वह सिंहराज मानो चिन्तन में लग गया लेखनीय बद्ध कहती है। दिलीप जी के विचार कहते हैं। कि उन्होंने लेखनम् ब्रह्म वाचाः वह चिन्तन में लग गएं और विचार आया कि दिलीप जी को मैंने आहार कर लिया तो राष्ट्र का और हमारा कौन रक्षक रहेगा। रक्षाम् भविते देवाः पहले ऋषि परम्परा के काल में पुत्रों! सिंहराज की रक्षा करने वाला राजा है। प्राणी मात्र की रक्षा करने वाला राजा है। नन्दनी को त्याग दिया और नन्दनी को त्याग करके उसके भाव महाराज दलीप जानते थे उनकी तपस्या पूर्ण हो गई १२ वर्ष तक तप किया वशिष्ठ ने याग किया श्रृंङ्गी के द्वारा याग कराया यहाँ राम का जन्म हुआ। राम अपने ब्रह्मचारियों में विद्यमान हो करके अपने पूर्वजों की गाथा का वर्णन कर रहे थे। देखो, इसको हम धेनु याग कहते है। धेनु याग राजा को करने चाहिए। धेनू याग से समाज ऊँचा बनता है। तो मेरे पुत्रों! देखो, उसी समय ब्रह्मचारियों की सभा का विसर्जन हो गया।

समान शिक्षा

राजा को यदि अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना है। राम की प्रतिमा को लाना है। तो मानो एक वंचक बनों में रहने वाला, उदर की पूर्ति करने वाला उसका ब्रह्मचारी,उसका बाल्य और एक राजा का बाल्य दोनों जब एक ही पंक्ति में भोग प्राप्त करने लगते हैं तो राजा का राष्ट्र पवित्र हो जाता है। यह शिक्षा प्रणाली पवित्र बना देती है। और यदि राजा का पुत्र ब्रह्मचारी कुछ पान कर रहा है। अध्ययन की प्रतिक्रिया कुछ कह रही है। तो राजा का राष्ट्र पवित्र नहीं बनेगा। उसमें महानता नहीं आयेगी क्योंकि ब्रह्मचारी सभी एक सूत्र के होते है। उनका धीमा धीमा विकास धीमी धीमी प्रतिक्रियायें बनती रहती है। प्रत्येक मानव को अपने जीवन में महान बनने के लिए नाना प्रकार के गम्भीरतम रहस्यों को उद्धृत करना है। मानो उसको उद्गम्यता में परिणित करना है। एक शूद्र के कुल में एक ब्रह्मचारी का जन्म हुआ एक राजा के कुल में जन्म हुआ आचार्य दोनों को शिक्षा दे रहा है। एकोमयी शिक्षा, अन्न भी उसी प्रकार का है। तो राष्ट्र समाज पवित्र बनेगा, विज्ञान में प्रतिभा और महानता का जन्म होता रहेगा।

तो मैं यह उच्चारण कर रहा हूँ कि वशिष्ठ मुनि महाराज के यहाँ ब्रह्मचारी भिन्न-भिन्न प्रकार का अध्ययन करते रहे ज्ञान और विज्ञान की उड़ान उड़ना और क्रियात्मक अपने जीवन को बनाना प्रातःकालीन सूर्य उदय होने से पूर्व मानो अपनी शारीरिक उन्नति करना बौद्धिक उन्नति हो गई है और शारीरिक उन्नति हो गई तो सामाजिक उन्नति स्वतः बन गई उसमें स्वतः महानता आ गयी। मेरे प्यारे! इसी प्रकार जब बौद्धिक शारीरिक और सामाजिक और आत्मिक जब ऊँचे बन गएं तब आत्मिक उन्नति स्वतः हो जाएगी। जब आत्मा की उन्नति हो तो हम सदैव सत्यवादी बनेंगे गृह को ऊँचा बनायेंगे और महानता की प्रतिभा को ला सकेंगे। तो पुत्रो! आज का विचार, मैं व्याख्याता नहीं हूँ। केवल तुम्हें परिचय देने के लिए आया हूँ वह परिचय क्या है। कि त्रेता काल का यह परिचय है बेटा! विद्यालय में वशिष्ठ माता अरून्धती अपने में महान उपदेश देकर के वशिष्ठ नाना प्रकार की त्रुटियों को स्पष्टीकरण में लाते रहते है। हमारे यहाँ बलि पुरूषार्थ को माना है। मेरे पुत्रों! मुझे महानन्द जी ने एक समय प्रकट कराया कि महाभारत काल के पश्चात् यागों में कुरीतियाँ आई, कल मेरे प्यारे महानन्द जी कुरीतियों को कुछ प्रकट

उन आज का विचार तो केवल यह है। कि हमारा जीवन एक महान और पवित्रता में परिणित हो याग का अभिप्राय है कि हमारा आत्मा उन्नतशील हो जाएं याग का अभिप्राय है कि गृह में पवित्रता आ जाएं। हमारे हिंसा के भाव कर्म वचन में नहीं रहे। हम कर्म वचन से महान बनकर के सागर से पार हो जाएं यह है बेटा! आज का वाक् समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा। अब वेदों का पठन-पाठन होगा। ३० दिसम्बर, १९८५ ग्राम जागतिया समय प्रातः ४.३० बजे

९ अध्ययन के पश्चात् क्रियात्मक अपेक्षा ०३ १२ १९८९

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी हैं और वे यज्ञोमयी स्वरूप हैं, याग उसका आयतन है, उसका गृह है, उसका सदन है और वह उसी में वास कर रहा है। क्योंकि हमारे यहाँ, जब भी ऋषि-मुनि एकान्त स्थलियों पर विद्यमान हो करके एक-एक वेदमन्त्र के ऊपर, जब विचार-विनिमय करने लगे तो उन्होंने एक-एक मन्त्र में ब्रह्माण्ड की विवेचना की है और ब्रह्माण्ड को और पिण्ड को, दोनों को, दोनों का उन्होंने समन्वय किया। और वह जो परमपिता परमात्मा अन्नतमयी जो ब्रह्माण्ड का स´चालक है, दोनों प्रकार के ब्रह्माण्ड का जो निर्माण करने वाला है, उसमें द्वितीयता नहीं। वह एकोकी से ही मानो देखो, उसका निर्माण करता है।

अध्ययन के पश्चात् क्रियात्मक अपेक्षा

तो विचार आता रहता है कि ऋषि मुनि, जब भी अपनी एकान्त स्थलियों पर विद्यमान हो करके उस परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता के ऊपर विचार-विनिमय करने लगते हैं, तो मानो उसका अनन्तमयी जगत् एक मानवीयत्त्व में समाहित हो जाता है। हमारे यहाँ याग के सम्बन्ध में, मेरे प्यारे महानन्द जी, मुझे और भी कहीं से यह प्रेरणा आती रहती है कि आज मैं याग के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार व्यक्त करूँ। क्योंकि याग के सम्बन्ध में नाना विज्ञानवेत्तओं ने बड़ी विचित्र-विचित्र उड़ानें उड़ी हैं। महर्षि भारद्वाज मुनि जैसे महापुरूषों ने और देखो, उद्दालक गोत्र के ऋषियों ने बड़ी विशाल उड़ानें ऊड़ी हैं। और उन्होंने ऐसा ही नहीं कि वो एक वेदमन्त्र या दर्शनों की व्याख्या करते रहे हैं, उन्होंने उसको क्रियात्मकता में लाने का प्रयास भी किया है। क्योंकि मानव वही महान् होता है, जो अध्ययन करने के पश्चात् उसे क्रियात्मकता में लाने का प्रयास करता है। और यदि वह उन दर्शनों का अध्ययन कर रहा है और यदि क्रियात्मक उसका जीवन नहीं है, उसके अनुमानों के अनुसार, तो मुनिवरों! देखो, वह जो अध्ययन की प्रतिक्रिया है, वह अपंग बन जाती है। तो उसे अपंग नहीं बनाना है, उसे मानो अपने में धारणा में धारणं प्रवः, उसे धारण करना है और उसी के अनुसार अपने जीवन को अग्रणीय बनाना है।

तो हमारे ऋषि-मुनि, बेटा! अपने ब्रह्मचारियों से भी अपनी वार्त्ता प्रकट करते रहते माता-पिता अपने पुत्रों से वार्त्ता प्रकट करते रहते, हमारे आचार्यो ने, बड़ी सुन्दर उपलब्धियाँ उनके जीवन में रही हैं कि वे जब अपने में क्रितात्मक कर्म करते थे, तो उनके गृह में आने वाली जो सम्पदा है अथवा जो प्रजा है, वह प्रजा उसी के अनुसार बरतती रहती थी। और, यदि क्रियात्मकता उनका जीवन नहीं है, तो उनकी सम्पदा, उनकी प्रजा उस महानता में गमन नहीं कर सकती है, जिसमें उसे करना चाहिए।

महर्षि याज्ञवल्क्य का याग-दर्शन

तो विचार आता रहता है, मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट नहीं करने आया हूँ, केवल परियच देना है, याग के सम्बन्ध में बेटा! हमारे यहाँ एक समय याज्ञवल्क्य मुनि महाराज और ब्रह्मचारी उनके अंग-संग विद्यमान है। क्योंकि हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, भगवान मनु ने एक नियमावली धारण करायी थी कि प्रत्येक विद्यालय में प्रातःकालीन याग होना चाहिए, क्योंकि देव-पूजा, हमारे यहाँ, परम्परागतों से बड़ी विशिष्ट मानी गई है, क्योंकि हमारे यहाँ, देखो, महर्षि वशिष्ठ इत्यादियों के विद्यालयों में भी प्रायः याग होता रहा, इसमें मानव-धर्म और मानवीयता और मानव-दर्शन उनके समीप आता रहा। जैसे, हमारे यहाँ, गोमेध-याग का वर्णन आता है, गोमेध याग

का वर्णन, बेटा! आचार्यकुलों में होता रहा है, आचार्यकुलों में देखो, मेधां ब्रहे व्रतं दिव्यां आचार्यजन ब्रह्मचारियों को अपने संग विद्यमान कराते रहते और उन्हें, मानो देखो, मेध प्रदान करते रहते मेधाम देखो, गौ मेधा ब्रह्मः वो अन्धकार से उसे प्रकाश में लाते रहते और प्रकाश में प्रत्येक इन्द्रियों के विषयों को आचार्य उनका शोधन कर देता है जब आचार्य उनकी प्रत्येक इन्द्रिय का शोधन कर देता है वह व्याकरण की पद्धति में ये माना गया हे कि व्याकरण कहते ही उसे हैं जहाँ विजातीय पदार्थ को दूरी कर दिया जाता है, सजातीय पदार्थ को सजातीय पदार्थ या पदार्थ को वहीं नृत्य किया जाएं, वही व्याकरण कहलाया जाता है। तो इसीलिए हमारे यहाँ आचार्यजनों के कुलों में प्रायः देखो, आचार्यजन ब्रह्मचारी को और उनकी जो जिज्ञासा बनती उसका समाधान करना, यह प्रायः हमारे यहाँ एक नृत्य और परम्परागतों से पद्धति मानी गई है।

जो महर्षि कालेत्वर ऋषि महाराज ने, जो मनु वंश में देखो, प्रारम्भ के मनु ने जब राष्ट्र का निर्माण हुआ, उन्होंने उनके पुरोहित कहलाते थे और बड़े महान् तपस्वी और आचार्य थे, जब राष्ट्र उनकी वार्त्ता स्वीकार नहीं करता था, उसके पश्चात् कालेत्वर ऋषि महाराजा राजा को यह शिक्षा देते कि चलो तपस्या करने चलें। तो तपश्चर होते रहते और वह तपस्या मानो प्राण और उनकी साधना करते रहते थे। मन, प्राण और विचार, ये तीन मनके एक ही सूत्र कहलाते हैं, तो इनके ऊपर उनका अध्ययन होता रहता गायत्राणि छन्दों में ले जाते, कहीं जल का आहार करते तो कहीं अन्न का आहार करते, कहीं वायु का सेवन करते तो मानो अपने अन्तरात्मा में एक पवित्रता की तपस्या धारा में परिणत हो करके मन-आत्मा जब पवित्र हो जाते तो, बेटा! देखो, प्रजा उसी विचारों में पुनः से रत्त हो जाती। आचार्यजन भी इस प्रकार के क्रिया कलाप करते रहे। आचार्य जनों के हृदयों में जब विकृतियाँ आ जाती है, तो जन समूह मानो देखो, विकृति में परिणत हो जाता है। ब्रह्मचारी, आचार्यजनों के अंग-संग रहने वाले उनमें विकृतयाँ जब ही आती हैं, जब आचार्य के मन में विकृतियाँ आ जाती हैं और इसीलिए आचार्यजन और ब्रह्मचारी का परम्परागतों से, सृष्टि के प्रारम्भ से परस्पर बड़ा समन्वय रहा है परम्परागतों से सृष्टि के प्रारम्भ से क्योंकि ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा से ले करके यह प्रणाली इसी प्रकार गतिवान होती रही है।

याग-विधान

तो आज मैं इस सम्बन्ध में नहीं केवल विचार यह देने के लिए कि हमारे यहाँ ये पद्धतियाँ परम्परागतों से तो देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के यहाँ एक समय प्रातःकालीन् ब्रह्मचारी अंग-संग विद्यमान हो करके प्रातःकालीन् याग, अग्निहोत्र करने के पश्चात मुनिवरों! ब्रह्मचारीयों ने अपनी जिज्ञासा प्रकट की। एक ब्रह्मचारी उपस्थित हुआ और ब्रह्मचारीयों ने कहा-प्रभु! हम याग कैसे करें? उन्होंने कहा-याग में साकल्य होना चाहिए, घृत होना चाहिए, दुग्ध होना चाहिए, याग मे देखो, यज्ञशाला विधिवत निर्माण होना चाहिए। देखो, यज्ञशाला त्रिकोण से ले करके चौबीस कोणों तक की यज्ञशाला का मानो विश्वकर्मा से निर्माण कराचा चाहिए, उसमें याग करो उसमें सप्तजिहा वाली अग्नि मानो तुम्हारे पापाम् भूषण प्रब्हे तुम्हारे में देखो, तुम्हें सजाती पुनः सेसजातीय कर देगी और वही अग्नि, मानो देखो, तुम्हारे विजातीय जो अवगुण हैं, उन्हें वह अपने में ग्रहण करने लगेगी तो इसीलिए सप्तजिह्वा वालो जो अग्नि है, उस अग्नि का तुम्हारे हृदय की अग्नि से समन्वय होना चाहिए। जैसे, यज्ञमान अपने हृदय की अग्नि और देखो, यज्ञशाला की अग्नि का, दोनों का समन्वय करता है। यदि यज्ञमान का मन यज्ञशाला पर विद्यमान हो करके विकृत होता है, अथवा द्वितीय स्थलियों में मन भ्रमण करता रहता है, मन में जब तक वह अग्नि की तरंगों, को तरंगित करते हुए देखा मन स्थिर नहीं हो पाता तो उसके मन, हृदय की जो अग्नि है, उसमें शुद्धिकरण नहीं आ पाता।

तो विचार आता रहता है, मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेषता तो वर्णन नहीं करूँगा, विचार केवल यह कि देखो, उस समय याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने जब यह वर्णन कराया देखो, मन-कर्म-वचन एक ही सूत्र में रहने

चाहिए और वह सूत्र है वेद रूपी जो ज्ञान का सूत्र है अग्नि का, जो अग्नि प्रदीप्त हो रही है उसका जो सूत्र है, वह सप्त-जिह्वा वाली अग्नि कहलाती है, उस अग्नि में अग्नि का अपना समन्वय करना है, तो वह मानो पवित्रत्त्व मे गमन करती है।

असुविधा में याग-विधान

उस समय ब्रह्मचारी ने कहा-प्रभु! यह तो हमने स्वीकार कर लिया परन्तु यदि गो-घृत, साकल्य और देखो, निर्माण कर्त्ता भी हमारे समीप, या निर्माण हम नहीं कर पाते तो उसके पश्चात हम याग कैसे करें? उन्होंने कहा-तुम देखो, यज्ञशाला का निर्माण तो कर ही सकते हो तो उसमें तुम मानो साकल्य यदि उपलब्ध नहीं है, सामग्री और तुम्हारा घृत भी उपलब्ध नहीं है गो-घृत, और दुग्ध भी उपलब्ध नहीं है तो तुम उसके पश्चात् मानो देखो, वह अग्नि में स्वाहा, प्राणाय स्वाहा अपने मानो देखो, पञ्च प्राणों और दस प्राणों की अमृताम् तुम साकल्य से आहुति देना मानो उसमें अर्पित करो और अर्पित करने के पश्चात तुम्हारा वा याग सम्पन्न होगा। उन्होंने कहा-प्रभु! यदि देखो, समिधा भी न हो, कहीं समिधा भी उपलब्ध नहीं हो तो भगवन! याग कैसे करें? उन्होंने कहा-तुम जल को अपने प्रोक्षणं ब्रह्मे तुम देखो, जल को पात्रों में ले करके तुम याग करो, मानो देखो, तुम सध्यां ब्रह्म जैसे संध्या में तर्पण होता है, मार्जन याग में होता है, तर्पण और मार्जन के द्वारा तुम मानो जल की आहुति प्रदान कर सकते हो। उन्होंने कहा-प्रभु! कहीं मानो जल भी उपलब्ध न हो, तो उस समय हम याग कैसे करें? उन्होंने कहा-जल भी उपलब्ध न हो, तो तुम शुद्ध कहीं देखो, दूरी देखो, पृथ्वी के परमाणुओं को पृथ्वी की रज को ले करके तो मानो उसमें स्वाहा का उच्चारण कर सकते हैं। वह गुरुत्त्व है, परन्तु उसमें पञ्चीकरण है उसके द्वारा तुम याग कर सकते हो। उन्होंने कहा-प्रभु! कहीं ऐसा भी उपलब्ध न हो? उन्होंने कहा-ऐसा न हो तो तुम मानो देखो, मन-कर्म-वचन को एकाग्र करते हुए तुम मानो जिन मन्त्रों का उद्गीत गाते हो, वेद के उन मन्त्रों का उद्गीत गा सकते हो और गाने से मानो देखो, उन मन्त्रों की पुनरूक्ति करते हुए तुम अपने याग को सम्पन्न करो मेरे प्यारे! ब्रह्मचारी मौन हो गये।

आध्यात्मिक याग-विधान

ब्रह्मचारी ने कहा-प्रभु! हमसे आन्तरिक जगत् का और बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् मानो जो आन्तरिक जगत् में क्रियाकलाप हो रहा है, वही तुम्हारे देखो, बाह्य जगत् में हो रहा है और बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् दोनों का समन्वय करना ही वो हृदय रूपी हृदय से जिन इन्द्रियों का समन्वय रहता है, उन साकल्यों को एकत्रित करके तुम हृदय रूपी यज्ञशाला में याग कर सकते हो।

याग विद्या

मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने याग की बड़ी विस्तृत विवेचना की और उन्होंने कहा-याग अपने में बड़ा पवित्रतम् कहलाता है, अपने में ही मानो देखो, अपने में अपनेपन का याग करते रहो। जैसे, देखो, संसार में जितना भी सुक्रियाकलाप है, जितना भी मानो देखो, विद्यादानाम् भूत प्रबृहः नन्दनम् मानो जितना भी विद्या का दान प्रदान किया जाता है यह भी याग है। को ब्रह्म ज्ञान दे रहा है, वह भी याग है, मानो किसी को सुमार्ग पर गमन करा रहा है वो भी याग है। माता अपने गर्भस्थल में याग कर रही पुत्र-याग कर रही है, वो भी याग है। राजा अपने राष्ट्र में मानो अध्वर्यु बन करके प्रजा और राजा दोनों को सुमार्ग और राजा स्वयं अपने में शुद्ध क्रियाकलाप करने वाला हो, वह भी याग हो रहा है। यों तो संसार में आत्मा का जितना भी मानो उत्कृष्ट होना है, वो सर्वत्र याग कहलाता है। इसीलिए इस संसार को परमपिता परमात्मा के जगत को आचार्यों ने मेरे पुत्रों! एक प्रकार की यज्ञशाला है और यज्ञशाला में याग हो रहा है। इसीलिए याग अपने में बड़ा अद्वितीय क्रियाकलाप है।

गार्हपथ्याग्नि पूजन

मेरे पुत्रों! ब्रह्मचारियों ने कहा-प्रभु! आप को धन्य हैं! आप हमारी जिज्ञासा को शान्त करने वाले आचार्य

वही होता है, जो हमारी जिज्ञासाओं को शान्त करने वाला हो। क्योंकि संसार में जितनी भी पठन-पाठन की पद्धति है, वो गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन कहलाता है, वो अग्नि का देखो, गार्हपथ्य नाम की अग्नि का याग कर रहा है। ब्रह्मचारी एकान्त स्थलियों में विद्यमान हैं अध्ययन कर रहा है और देखो, मन-कम-वचन से मन-कर्म-वचनम् बह्वे विचारा सुतम् वह विचारों से याग करता पठन-पाठन क्रियाओं में लगा हुआ है, मन-मस्तिष्क उसका वहीं रहता है, तो वो पवित्र याग कर रहा है। हे गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करने वाले ब्रह्मचारी! तू जब याग करता है, अपने में देखो, नाना प्रकार की अर्थिकता को, नाना प्रकार के तू सारे ज्ञान-विज्ञान को और इस भौतिक-विज्ञान को, मानो देखो, गणित विद्या का जब तू अध्ययन करता है, तो तू गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन कर रहा है। वह गार्हपथ्य अग्नि कहलाती है, जब प्रातःकाल में तू अपने हृदय रूपी अग्नि को प्रदीप्त करता हुआ बाह्य और वह शब्दों की अग्नि के ऊपर तेरा अधिपथ्य हो जाता है, तो तू महानता में परिणत हो जाता हैं। तो इस प्रकार मुनिवरों! देखो, ब्रह्मचारियों ने अपने में अपनेपन को ही दृष्टिपात कराया। आचार्य के चरणों में विद्यमान हो करके मानो अपने में ही अपनेपन और आचार्यत्त्व को धारण करता हुआ गोमेध याग कर रहा है।

गोमेध याग

गोमेध याग के बहुत से भिन्न-भिन्न प्रकार के पर्यायवाची हैं, देखो, ब्रह्मचारी विद्यालय में गोमेध याग कर रहा है, एक मानो देखो, किसी नदियों के तट पर विद्यमान हो करके, एक योगेश्वर जब अपनी इन्द्रियों के ऊपर संयम करता है, और इन्द्रियों के विषयों को साकल्य बना रहा है और साकल्य बना करके अपने में एकोकीकरण कर रहा है, वह मानो देखो, वह भी गोमेध याग कर रहा है। मेरे पुत्रों! देखो, एक उर्ध्वा में गमन कर रहा है, मानो देखो, इन्द्रियों के विषयों का साकल्य बनाता है, हृदय का हृदय से मानो देखो, श्रद्धा में ही परिणत हो जाता है, और श्रद्धा में ही परिणत हो करके देखो, एक सूत्र याग कर रहा है, उसी हृदय को एकाग्र करता हुआ, मानो द्वितीय विराजजमान हो करके वह श्रद्धा व दक्षिणा में परिणत हो करके मानो त्यागपूर्वक परमात्मा के हृदय से मिलान कर रहा है। वह हृदय जो यज्ञशाला में मानो परम परमपिता परमात्मा के हृदय से समन्वय हो रहा है वह यौगिक याज्ञ कर रहा है, वह भी मानो देखो, एक याग कहलाता है। इसी प्रकार वह गोमेध कहलाता है क्योंकि गो के बहुत से पर्यायवाची शब्द हैं। तो मुनिवरों! देखो, एक राजा के राष्ट्र में राजा अपने राष्ट्र में गो का हनन नहीं होने दे रहा है, वह पशु है और पशु की रक्षा हो रही है उसके राजा के राष्ट्र में दुग्ध होना चाहिए। तो वह मानो देखो, वह भी गोमेध याग है। पशु वृत्तियों का याग कहलाता है।

तो मैं आज बेटा! तुम्हें याग के सम्बन्ध में विशेषता में नहीं ले जा रहा हूँ, ये तो पर्यायावाची शब्द है, इनकी तो विवेचना प्रायः होती रहती है। तो विचार आता रहता है कि संसार में जितना भी सुक्रियाकलाप है, वह मानो देखो, सर्वत्र, याग कहलाता है। तो इसीलिए मानव को जब देव-याग में परिणत होता है जहाँ यज्ञमान विराजमान होता है, वह जो शुद्धिकरण कर रहा है, उषणं ब्रह्वे वह मानो देखो, वो याग एक अग्नावृत कहलाता है। तो विचार आता रहता है एक यौगिक याग कर रहा है, वह अपने हृदय में ही, हृदय का हृदय में ही याग कर रहा है। पुत्रों! वह और भी महान पवित्रतम् कहलाता है।

वो याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा है कि ब्रह्माण्ड को पिण्ड में और पिण्ड को ब्रह्माण्ड में, दोनों का परस्पर मानो समन्वय होना चाहिए और, मुनिवरों! देखो, वह समष्टि और व्यष्टि देखो, व्यष्टि को समष्टि में और समष्टि के व्यष्टि को जो जानता है, मेरे पुत्रों! देखो, वह महान धर्म और मानवीयता में सदैव परिणत रहता है। तो आओ, मुनिवरों! देखो, मैं इस सम्बन्ध में विशेष तुम्हें विवेचना देने नहीं आया हूँ। अब मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः-मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! अथवा मेरे भद्र ऋषि मण्डल! भद्र समाज! अभी-अभी, मेरे

पूज्यपाद गुरुदेव विद्यालय की ओर याग की बड़ी विस्तृत विवेचना कर रहे थे। क्योंकि प्रायः ये गागर में सागर की कल्पना प्रायः करते रहते है। क्योंकि प्रत्येक शब्द अपने में याग है, प्रत्येक क्रियाकलाप अपने में याग है, पूज्यपाद गुरुदेव का यही कथन रहा है। क्योंकि इन्होंने नाना प्रकार के यागों का चयन और कर्मकाण्ड के ऊपर बड़ा अध्ययन किया। वेद के मन्त्र और कर्मकाण्ड इनका बड़ा विशिष्ठ बन करके रहा हैं आज मैं विशेषता में नहीं जाऊँगा।

पूज्यपाद गुरुदेव! यह संसार परम्परागतों से बड़ा एक संस्कारो का समूह चला आ रहा है, क्योंकि इस संसार में प्रत्येक जो प्राणी मात्र है, इसमें एक-दूसरे के संस्कारों से मानव कटिबद्ध हो रहा है और जहाँ जिसके संस्कारों की अन्तिम कड़ी आती है, वहीं वह सम्पन्नता को प्राप्त होता रहा है, जब मानव के हृदय से हृदय का मिलन होना रहता है, वहीं उसकी प्रतिभा समाप्त हो जाती है। मैं विशेषता में नहीं जा रहा हूँ, बहुत समय को दृष्टिपात करने के पश्चात् जन्म-जन्मातरों के संस्कारों की कड़ी जहाँ वो मानो सम्पन्न होती है, वहीं होती रही है, विचारों का एक समूह होता रहा है, इसीलिए आज जहाँ हमारी यह वाणी जा रही है वहाँ एक याग सम्पन्न हुआ है, और वो सम्पन्न ऐसी दृष्टि में हुआ है, मेरी में जहाँ मिलन होना बिछुड़न होने से मानो उसी कड़ी में उसका सम्पन्न होना है। यह प्रायः मानव के संस्कारों का एक समूह है। क्योंकि आचार्यों ने दार्शनिकों ने इस संसार को जिस भी कल्पना में और जिस आभा में इसको मापने का प्रयास किया है, वहीं वह देखो, सम्पन्नता को प्राप्त होता रहा है।

इस संसार को देखो, यदि कल्पवृक्ष कहा जाएं तो वहाँ पूर्णत्त्व है, यदि संसार को विचारशाला कहा जाएं तो वह भी सम्पन्न हैं। यदि इस संसार को यह कहा जाएं यह देने-लेने की व्यापारशाला है, तो वहाँ भी यह मानो सम्पन्नता को प्राप्त होती रही है। यह विचारधारा यदि हम स्वीकार कर लें कि संस्कारों का समूह है, तो वहाँ भी यह पूर्णता को प्राप्त होता रहा है और यदि इस संसार को, पूज्यपाद तो जानते ही हैं हम यह स्वीकार कर लें कि यह नृत्यशाला है, यहाँ मानव देखो, मरण और जीवन के लिए आता है, और उसके ऊपर विवेचना की जाएं तो वह भी पूर्णता को प्राप्त हो जाती है। इसीलिए मैं आज, देखो, मैं अपने यज्ञमान के साथ मेरा अन्तरात्मा तो रहता ही है, परन्तु अन्तरात्मा यहाँ ब्रह्मे, क्या देखो,-हे यज्ञमान! मेरा अन्तरात्मा तो यही कहता है, कि तेरे गृह में सदैव द्रव्य का सदुपयोग होता रहे और तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। तेरे जीवन में महानता आती रहे और विशालता आती रहे। परन्तु देखो, एक गृह में एक मानव का मिलन है, तो उसी का वहीं विछड़न हो जाता है तो यह बड़ी विचित्रता की धारा है। क्योंकि मानव है। क्या, मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से बिछुड़ गया पुनः मिलन हो गया, मानो बिछुड़ करके मिलन होना और मिलन हो करके विछड़न होना, इसी का नाम यह संसार है। यदि मैं इसके ऊपर विवेचना करने लगूँगा तो इसके अन्तिम छोर तक चला जाऊँगा, परमात्मा की धारा में मैं प्रवेश कर जाऊँगा। तो इसीलिए प्रत्येक मानव को यह विचारना है, कि याग बड़े सम्पन्नता के रूप में मानो देखो, पराब्रह्मे वायुमण्डल की प्रतिभा अपने में प्रतिभा बन करके रहती है।

तो विचार आता रहता है, मैं जन्म-जन्मातरों की कड़ियों में तो नहीं जाना चाहूँगा कौन, किसका क्या, किससे सम्बन्ध है? यह विचारधारा तो मैं नहीं प्रकट करने आया हूँ, केवल इतना ही है कि देखो, मिलन-बिछुड़न है, इसी का नाम दुःखद है। आत्मा विनाश को प्राप्त नहीं होता, न शरीर की विनाश को प्राप्त होता है, केवल उसका रूपान्तर होता है। दर्शनकारों की एक ही बड़ी विचित्रता रही है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, जब गम्भीर दर्शन में प्रवेश कर जाते हैं, तो उसमें केवल एक ही वाक्य आता है न ही शरीर का विनाश होता है, न आत्मा का विनाश होता है। परन्तु देखो, मुझे दाहः रही है कि मैं जिस आत्मा के सम्बन्ध में उद्गीत अपने विचार दे रहा हूँ, वो दाह रूप में आत्मा अपने शरीर को त्याग करके चला गया है, इसका मुझे आश्चर्यत्त्व मानो इसलिए नहीं होता क्योंकि मानव

का अन्तर्हृदय दाह में चला जाता है, कही दाह संस्कारों का पुनः से समूह बनता रहता है। इसीलिए मैं इस दर्शन में नहीं जाऊँगा। केवल विचार-विनिमय मेरा यही रहा है किमैं अमृतम ब्रह्मो ये तो सम्बन्ध हैं, कहीं कहीं मानो, धर्म में कहीं कहीं मानो विशुद्ध क्रियाकलाप में एक मानो कहीं हमे उसे बाध्य कर रहा है, करने के लिए द्वितीय प्राणी उसमें देखो, बाध्यता में कहता है अमृतं मान ब्रह्मे मानो देखो, इसमें, मुझे कहीं देखो, इस प्रकार का कष्ट दिया तो मैं भी इसी प्रकार का कष्ट मानो उसके अन्तरात्मा की एक वृत्तियाँ विद्यमान होती हैं।

तो विचार आता रहता है, मैं इस सम्बन्ध में कोई विचार नहीं देना चाहता हूँ, विचार केवल यह कि-हे यज्ञमान! मेरा अन्तरात्मा तो तेरे सदैव साथ रहता है, मेरी प्रेरणा, मानो देखो, द्रव्य का सदैव सदुपयोग होना चाहिए। गृह में जितना भी, जिस गृह में सदुपयोग होता है, उतना ही द्रव्य उसकी ममता बन करके, उसे अपने कण्ठ से आलिंगन कर लेती है, जितना द्रव्य का दुरूपयोग होता है, उतना ही वह द्रव्य मानो देखो, एक मानव मात्र वो देखो, विदुषी न बन करके वह ममता न बन करके वह अममता बन करके उसे अपने हृदय से दूरी कर देती है। और एक समय वह माया से विहीन हो जाता है, वह उस ममता से विहीन हो जाता है। जो मानव देखो, द्रव्य का सदुपयोग नहीं करता उसके हृदय में विडम्बना बन जाती है, एक दाह बन जाती है तो वह उसके हृदय में एक दाह बन जाती है, तो वो दाह नहीं रहनी चाहिए।

इसीलिए देखो, आज मैं विशेष विचार देना नहीं चाहता विचार केवल यह कि आज का विचार यह है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अपनी गागर में सागर की कल्पना तो करते ही रहते हैं परन्तु मैं तो केवल इतना कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। जीवन महानता में देखो, अग्रणीय होता रहे! हृदय में, देखो, जब तुम ऊँचे क्रियाकलाप अपने गृह में करते रहोगे तो आगे से तुम्हारी प्रजा भी ऊँचे क्रियाकलापों को, मानो उसमें तत्पर रहेगी, ऐसी मेरी कामना रही है।

तो विचार क्या? पूज्यपाद गुरुदेव का तो बड़ा अनुभव है, इन्होंने बहुत अध्ययन किया है तपस्याऐं मानों की है, मानों तपस्या के प्रति भोग में अपने में बहुत दूरी ले जाते हैं, हमें विचार देने लगते हैं तो बहुत दूरी चले जाते है, दर्शनों में चले जाते है, तो दर्शनों की, याग में प्रवेश हो जाते है, तो याग की चर्चा करते रहते हैं, तो इस सम्बन्ध में, तो मैं विचार देना नहीं चाहता हूँ। केवल यह कि मैं परमपिता परमात्मा से सदैव प्रार्थना करता रहता हूँ- हे भगवन! अम्रतां ब्रह्मणे हे यज्ञमान! तू सदैव महानता में गमन करता रहे। और देखो, जितने भी दुःखद हृदय में प्रवाह, देखो, उसकी दाह तेरे हृदय में नहीं रहनी चाहिए मानो ये तो जन्म-जन्मातरों के संस्कारों की कड़ी है ये बनी रहेगी। मानों संस्कार विद्यमान होते हैं, जब तक यह जगत् हैं और संस्कारों से जहाँ विहीन हुआ, वहीं देखो, परमात्मा से उसका मिलन हो जाता है।

तो यह आज का विचार, मैं विशेषता में वर्णन नहीं करने जा रहा हूँ, केवल यह देखो, वाममार्ग का काल, है। यहाँ सुरा-सुन्दरी में मानव लगा हुआ है और देखो, इसीलिए यज्ञमान ऐसे काल में देखो, जो अपने द्रव्य का सदुपयोग जो करता है, वो महान कृतियों में रत्त हो रहा है। यह आज का विचार हमारा सम्पन्न होने जा रहा है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने देखो, गोमेध याग के सम्बन्ध में, ब्रह्मचारियों के सम्बन्ध में बड़े उद्गीत हमों बाल्य काल में दिया करते थे, मानो उसी प्रकार उनके उद्गीत प्रारम्भ होते रहते है। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊँगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः-मेरे प्यारे ऋषिवर! अभी-अभी मेरे प्यारे महानन्द जी ने ये जो अपना विचार दियाहे, वह बड़ा एक पृथ्वी के तुल्य है, जैसे पृथ्वी अण्डाकार है, उसी प्रकार इन्होंने अपने विचारों को अण्डाकार के रूप में परिणत किया है, हम उनके विचारों को जान नहीं पाए हैं। परन्तु कोई वाक्य नहीं, जो संस्कारों के ऊपर अपना ये विचार दे रहे थे, इनके विचार तो दर्शनों की प्रतिभा में बड़े विचित्र हैं, कोई वाक्य नहीं, आज का यह विचार क्या

कह रहा है कि, हम परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता के ऊपर सदैव विचार-विनिमय करते हुए और ये जो परमात्मा का अनूठा जगत् है, यह अनन्तमयी है और वह यज्ञोमयी स्वरूप है, क्योंकि परमपिता परमात्मा सदैव याग में परिणत रहता है। यह परमपिता परमात्मा ने ब्रह्माण्ड रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया है और इस निर्माण ब्रहे इस संसार को हमें जानना है, हमारे आने का उद्देश्य केवल यही है तपस्या में तपश्चर रह करके एक-एक वाकय के ऊपर हमें अपने में अनुभव उसका अनुभव करते हुए सागर से पार हो जाएं। यह आज का विचार, अब सम्पन्न होने जा रहा है। शेष चर्चाएँ, कल प्रकट करेंगे। अब वेदो का पठन-पाठन-हापुड, उ० प्र० ३-१२-८९

१० पुत्रेष्टि याग २१ ०४ १९९०

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी हैं, और उसका ज्ञान विज्ञान भी अनन्तमयी माना गया है। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, ज्ञान और विज्ञान की महिमा का गुणगान गाया जाता है। जिस ज्ञान और विज्ञान की महानता प्रत्येक मानवीय हृदय में समाहित रहती है, और वह हृदय अगमता को प्राप्त होते रहे हैं।

हमारे वेद का एक-एक मन्त्र हमें उर्ध्वा की उड़ान उड़ाता रहता है, और नाना रूपों में हमें दृष्टिपात आता रहता है। आज मैं तुम्हें विशेषता में नहीं ले जा रहा हूँ केवल यह कि हमारा वेदमन्त्र क्या कहता है और उसका जो ज्ञान और विज्ञान है वह कितना अनुपम है और वह कितना विचारणीय रहा है। हमारे यहाँ नाना ऋषिवर अपनी-अपनी स्थितियों पर विद्यमान हो करके नाना प्रकार का विचार विनिमय करते रहे हैं और परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान के ऊपर प्रायः अपने-अपने विचार व्यक्त करते रहते हैं। मेरे प्यारे! मानव के जीवन का एक मूल लक्ष्य माना गया है, प्रत्येक मानव के हृदय में यह आकांक्षा बनी रहती है कि मैं ब्रह्माण्ड को जानने वाला बनूँ, अणु और परमाणुओं में मैं रत्त हो जाऊँ। इस प्रकार का विश्लेषण, इस प्रकार की विचारधाराएँ प्रायः परम्परागतों से मानव के हृदय में रही है। जब भी वह एकान्त स्थली में विद्यमान हुए हैं तो नाना विचारों में रत्त हो गएं हैं। चाहे वह विद्यालय हो, चाहे दार्शनिक प्रतिभा हो परन्तु उसमें ही रत्त रहे हैं। तो आज का हमारा वेदमन्त्र कहता है कि संसार के ऊपर मनन चिन्तन करते रहें क्योंकि हमारे यहाँ दार्शनिक जन एक-एक वेदमन्त्र पर विवेचना करना प्रारम्भ करते हैं तो सर्वत्र ब्रह्माण्ड को मापने लगते हैं, मानो एक-एक अणु परमाणु को मापने लगते है।

यह संसार क्या है?

आज मैं तुम्हें विशेषता में तो नहीं ले जा रहा हूँ, आज मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ ऋषि मुनि यह कहते हैं, कि यह संसार क्या है? इस संसार के सम्बन्ध्य में अपना नाना मन्तवय देते रहे हैं। किसी ने संसार को कल्प-वृक्ष के रूप में परिणित किया है, किन्हीं ने कहा है यह संसार एक विचारशला है, किसी ने कहा यह संसार देने लेने की व्यापारशाला है परन्तु किन्हीं आचार्यों ने कहा, नहीं यह जो संसार है, एक प्रकार की यज्ञशाला है। यज्ञशाला, इसलिए क्योंकि प्रत्येक मानव यहाँ सुक्रियाकलाप करने के लिए आया है, यहाँ सुक्रियाओं में रत्त रहने के लिए आया है और विचारता रहता है कि मेरा जीवन सु-बन जाए, पवित्रता में परिणत हो जाए। यह मानवीयता की विचित्रतव एक धारा है। दार्शनिक यह कहता है कि जहाँ यज्ञशाला है वहाँ वह मृत्यु लोक की आभा मे रत्त रहा है। यह मृत्यु लोक है जहाँ प्रत्येक मानव मृत्यु से विजय होने के लिए आया है। मृत्यु का अभिप्रायः दार्शनिक यह कहता है कि यह संसार जहाँ यज्ञशाला में वर्णित रहा है वही यज्ञशाला सदैव अपनी आभा में रत्त रही है।

कन्या याग

विचार आजा है जब हमारे यहाँ यज्ञशाला का वर्णन आयो जो एक दूसरे में घटित होने वाला यह जगत है। यहाँ यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान होकर नाना प्रकार के यज्ञों में परिणत रहा है। मुनिवरों! देखो, यहाँ नाना प्रकार के यज्ञों का चयन हमारे वैदिक साहित्य में आता रहता है जैसे हमारे यहाँ कन्या याग का वर्णन है। कन्या याग के सम्बन्ध में महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने, अपने में एक दार्शनिक रूप का वर्णन कर यह कहा कि

संसार एक यज्ञशाला है। यहाँ कन्या याग का भी वर्णन होता रहता हैं। वेद के आचार्यो ने कहा है कि कन्या पहले देवलोक में रहती है। उसके पश्चात् वह पितर लोक में रहती है और उसके पश्चात् वह पति लोक को प्राप्त होकर, उसे याग करे का अधिकार है। यहाँ याज्ञवल्क्य महाराज ने एक वेदमन्त्र का आश्रय दियाः कन्या भूतम् ब्रह्मणः ब्रतम् पितर लोकम् ब्रहे। अरूणाम् ब्रहें कृतम् पतिलोकम् भूयशतम् ब्रहे।

वेद का मन्त्र यह कहता है-याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने इसकी विवेचना करते हुए कहा है कि कन्या पहले देवलोक में रहती है उसके पश्चात् पितर लोक में रहती है। पितर लोक को प्राप्त होने के पश्चात् पति लोक को प्राप्त होकर उसे याग करने का अधिकार प्राप्त होता है। यहाँ याग की सीमा को उन्होंने बद्ध किया है। इसमें यहाँ नाना प्रकार के प्रसंग आते रहते हैं। ब्रह्मचारी को अपने में याग करने का अधिकार हैं वह गार्हपथ्य नाम की अग्नि की पूजा करता है और याग जो नाना प्रकार की ग्रन्थियाँ हैं जटा पाठ, घन पाठ, माला पाठ में गान गाने से, उनके अन्तर्हृदय की ग्रन्थियां में स्पष्टीकरण आ जाता है। और वह अपने में स्वीकार करता है कि मैं प्रकाश के मार्ग पर जाना चाहता हूँ, प्रकाश में रत्त रहता चाहता हूँ।

कन्या पहले देवलोक में रहती है। जो उसका बाल्यकाल होता है वह कन्या का देवयान होता है, देवलोक होता है और देवता उसकी रक्षा करने को तत्पर रहते होते हैं। देवताओं से भी आभूतम् जब पितर-लोक को प्राप्त होती है, पिरतश्चम् ब्रह्मा पितरश्चम् ब्रह्मे कृतं जब कन्या की रक्षा करने वाला पितर जन है। वह पितर लोक कहलाता है जब माता के संरक्षण में, अपने अन्तर्हृदय में हवि देने वाली वाली कन्या पितर को प्राप्त होती रही है। हमारे यहाँ पितरों के बहुत से पर्यायवाची शब्द है। माता भी पितर है, पिता भी पितर है, आचार्य भी पितर कहलाता है। यहाँ पितरों की विवेचना करते हुए कहा है माता पितर इसलिए कि वह अपने गर्भस्थल में पितर बन करके शिक्षा प्रदान करती है। पितर का अर्थ जो रक्षक होता है, रक्षा करने वाले को ही पितर कहा जाता है। माता पितर है और पिता इसलिए पितर वह भी रक्षार्थी बना हुआ है, रक्षा कर रहा है। रक्षा करते हुए, उसे शिक्षा देता है। आचार्य इसलिए पितर है, क्योंकि आचार्य उसे नाना प्रकार की विद्याओं में परिणत कर देता है। पिरतश्चम् ब्रह्मा पितरश्चम् ब्रह्मे कृतं।

वह पितर कहलाते है, वह पितर-जन आचार्य जब कन्या को शिक्षा प्रदान करता है। दिव्याम् गुरु और शिष्य के रूप में विद्यमान होकर के नाना प्रसंगों में चले जाता हैं। जैसे एक समय माता मलदाल्सा पितर लोक में अपना अध्ययन कर रही थी, तो अध्ययन करके, अपने आचार्य से उसने यह प्रश्न किया, प्रभु यदि मैं बुद्धिमत्ता को प्राप्त हो गई तो मैं इस संसार में गृहों में प्रवेश करना चाहूंगी। वह वेद विद्या का अध्ययन करती रही तथा बहुत काल पश्चात् उसे कई वेदमन्त्रों में पितर याग की महिमा का, पुत्र याग की महिमा को वर्णन स्मरण किया, तो आचार्य से बोली, मेरी इच्छा बन रही है यदि भगवन! जब पितर लोक से कुलज्यों को प्राप्त होऊँगी तो मेरी इच्छा है कि मेरे गर्भ से जब-पुत्र-पुत्री का जन्म हो तो वह इस संसार के वैभव में न परिणत हो, वह ब्रह्मज्ञानी बने और ब्रह्मवेत्ता बनकर के महानता को गमन करता रहे। ऐसा मानो कि वह सहस्त्रों राजाओं के समान होता है जो ब्रह्मवेत्ता होता, ब्रह्मनिष्ठ होता है और ब्रह्म की प्रतिभा में रत्त रहने वाला होता है। जहाँ कन्या अपने में अध्ययन कर रही है दर्शनों की आभा में रत्त हो रही है, वह पितर यान- पितर लोक कहलाता है। कन्या उसके पश्चात् पितरों से उपराम होकर पतिलोक को प्राप्त होती है। पति लोक में जाने के पश्चात् उसे याग करने का अधिकार है। वेदमन्त्र कहता है। तदरस्तम् ब्रह्में वरणाम् पुत्रों! समन् ब्रवम् कृतं देवत्वाम् यागा।

यहाँ पुत्र याग करने का अधिकार उस कन्या हो है जो पुत्रों! समम् ब्रह्मा ब्रवम् अर्थात जब पति लोक को प्राप्त हो जाए। यहाँ सन्तान की उत्पत्ति का नामोंकरण याग माना गया है। हमारे दर्शनों के मीमांसकार मीमांसा करते हुए कहते है कि प्रत्येक क्रिया का नाम याग माना गया हैं, याग का अभिप्रायः हूत करना। याग का अभिप्रायः

है अपने में महानता को प्राप्त होना। वहाँ पति लोक को प्राप्त होकर उसे याग करना हैं, याग पुत्रेष्टी याग में परिणत हो जाता है। सन्तान को जन्म देना ही याग है। दर्शनाचार्य ने कहा है कि इसे कन्या याग कहते है। जैसे वाजपेयी याग है, अग्निष्टोम याग है और भी नाना प्रकार के याग हैं इसमें मानव परिणत रहा है। माता याग कर रही है। याग में वेदमन्त्र यहाँ तक कहता है कि माता, अपने गर्भ के अन्तरात्मा से वार्त्ता प्रकट कर रही है। सम्भवे ब्रह्मे। हे! आत्मा कैसे मेरे गर्भ में तेरा वास हुआ है मैं जानना चाहती हूँ। माता यह कहती है तो माता शिक्षा देती है तुझे ब्रह्मवेत्ता बनाना है, ब्रह्मनिष्ट बनकर तुझे प्रकृति के क्षेत्र में ब्रह्म को ही दृष्टिपात करना है। इस प्रकार की शिक्षा माता देती रहती है तो माता का यह जीवन महानता को प्राप्त होता है। इसको कन्या याग कहते हैं। कन्या याग ही पुत्रेष्टि याग में परिवर्तित होता रहा है। वेद के आचार्यो ने जहाँ कहा हैं। यह पुत्रेष्टि याग है वही वाजपेयी याग का वर्णन अथवा धनुर्याग का वर्णन भी आता रहा है। धनुर्याग किसे कहते है-आचार्य और जब ब्रह्मचारी एक स्थली पर विद्यमान हो धनुर्विद्या अपनो को प्रदान करता है तो धनुर्विद्याएं अपने में महानता को प्राप्त होती हैं। मुझे वह काल स्मरण आ रहा है जिस काल में माता अपने पुत्रों! को लेकर नदी के तट पर अपने ब्रह्मचारियों को, पुत्रों! को अस्त्र-शस्त्रों की विद्या प्रदान कराती रहती थीं। वह धनुर्याग कहलाता है जिसे मेरी प्यारी माता अपने यशोबल से उसे ग्रहण कराती रही है, क्योंकि शिक्षा देने वाली माता भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा देती रही है। द्वापर के काल में माता गंगा, अपने पुत्र भीष्म को, देववृत्त को धनुर्याग की विद्या प्रदान करती रहती, इसलिए उनका धनुर्याग बड़ी सफलता को प्राप्त होता रहा है और आचार्य उस विद्या को नहीं प्रदान कर सकता जो मातादेती रही है मताम् ब्रह्मे , त्रेता के काल में, सीता महर्षि बाल्मीकि के आश्रम में विद्यमान होकर धनुर्विद्या प्रदान करती रहती थी। धनुर्विद्या का अध्ययन कराती रहती थी, वेद का अध्ययन कराती थी। इसलिए मेरी माताओं का धनुर्याग पर अनुशासन होना चाहिए जिससे उनकी पुत्र-पुत्रियों में एक महानता की प्रतिभा आ जाए और यह राष्ट्र और समाज उन्नति को प्राप्त हो जाए।

विचार यह, इतिहास के पृष्ठ है, आज, मेरी प्यारी माताये बाल्य को धनुर्याग में परिणत कर उसे आचार्य को प्रदान कर देती और वे कहती, हे आचार्यजनो मेरे बाल्य को धनुर्याग में पारांगत करो, जिससे हमारा समाज ऊँचा बने और धनुर्याग की रक्षा हो। वेद की रक्षा उस काल में होती है जिस काल में वेद के मन्त्रों को क्रियात्मकता का स्वरूप प्रदान किया जाता है उसी के पश्चात् केवल वेद की रक्षा कर सकते हैं। केवल उद्गीत गाने वाला उद्गीत ही गाता रहता है जब याग होता है।

मुझे स्मरण आता है बेटा! माता अरून्धति का जीवन तुम्हें स्मरण होगा कि वह ब्रह्मचारियों को विद्यालय में धनुर्याग की शिक्षा देती रहती। वे आचार्य, अपने पति महर्षि वशिष्ठ से कहती इन्हें ब्रह्मज्ञान भी प्रदान करो। ब्रह्मज्ञान और धनुर्याग दोनों एक दूसरे के पूरक कहलाते हैं। नाना प्रकार की प्रायः विद्याओं की शिक्षा प्रायः हमारे यहाँ उद्गीत गा मेरी पुत्री को प्रदान की जाती। मुझे स्मरण आता रहता है महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम में भी और महर्षि कपिल मुनि के आश्रम में भी कन्याओं को शिक्षा प्रदान की जाती और इस प्रकार की विद्यायें भी प्रदान की जाती। जिन विद्याओं से माता अपने गर्भ स्थल में अपने पुत्र को ऊँचा बनाती रही है। जिस देवी की हमें पूजा करनी है, उसी देवता की पूजा करके माता अपने गर्भ स्थल में उसी देवता के गुणों को भरण करती रही है। उसी गुणों वाले गुणों का ध्यान करते हुए पुत्रों! को जन्म देती रही है। हमारे यहाँ, परम्परागतों सेही उस विद्या की प्रतिभा प्रायः मानव मस्तिष्क में रही है।

हमारे यहाँ जैसे दीपावली मानो दीपराग की प्रतिभा आती रहती है उसी प्रकार मल्हार राग की भी प्रतिभा आती रही है। प्रायः दो प्रकार के रागों का वर्णन हमारे वैदिक साहित्य में आता रहा है और उसके ऊपर मानव परम्परागतों से अन्वेषण करता रहा है यह दोनों प्रकार की जो विद्यायें है जिसे हमारे यहाँ दीपावली दीपमालिका

बन गान गाने लगती है। मानव का जो प्राण है उस प्राण और अपान को, सामान्यता व्यान को जो खेचरी मुद्रा द्वारा मुद्रित करता है, तो दीपमालिका बन जाती है। इसी प्रकार शीतली प्राणायाम में जैसे उदान और समान दोनों का समन्वय कराता हुआ प्राण की उसमें पुट लगाकर शीतली प्राणायाम करता है, तो शीतली प्राणायाम का वायुमण्डल में जो शीतन जलम् प्राणम् ब्रहे वृताः जल के परमाणु हैं वे उद्बुद्ध हो जाते हैं और वे वृष्टि के रूप में, गान के रूप में परिवर्तित होते रहते हैं। वह याग, मन और प्राण दोनों की साधना हैं यह शारीरिक, देखो, ब्रह्मचर्य की आभा में साधना की जाती है। उस समय सर्वत्र विद्या उद्बुद्ध हो जाती है, जिसको देखो, क्रियात्मकता में परिणत किया जाता है। महर्षियों ने देखो, इसको इस प्रकार उद्गीत गाया है। त्रेता के कालमें माता अरून्धति इस विद्या को जानती थी। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज भी इसे जानते थे। सतोयुग के काल में तो नाना ऋषि इस प्रकार के हुए है। नाना ऋषि द्वापर के काल में भी रहे हैं। जैसे महर्षि दुर्वासा मुनि अपने में जानने लगते थे वे इस विद्या को जानते है। जो प्राण को अपान में, अपान को उदान में, उदानको समान मे, समान को व्यान में पुट लगाना जानता है वह सर्वत्र विद्याओं में पारांगत हो जाता है। वह इस विद्या में रत्त हो जाता है। यह याग माना गया है।

धनुर्याग

हमारे यहाँ कन्या याग का जहाँ वर्णन आता है वही धनुर्याग का वर्णन भी है। धनुर्याग की विद्याओं में सर्वत्र जानकारी करायी जाती है। मुझे स्मरण आता रहता है महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ धनुर्याग का प्रायः चयन होता रहा है। महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में दण्डक वनों में भी यह धनुर्विद्या का चयन होता रहा है। मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन कराया आज उनकी पुनःरूक्ति किए देता हूँ। महर्षि विश्वामित्र को वशिष्ठ ने कहा, दण्डक वनों में याग करों। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम। महर्षि विश्वामित्र ने दण्डक वनों में एक धनुर्याग किया और धनुर्याग किया तो यागम् ब्रहे। वह जब याग में परिणत हो गएं तो नाना ब्रह्मचारी उस वाक्य को पान करने आ गये। राजकुमारों को लाकर धनुर्याग को पूर्ण कराया। यह धनुर्विद्या क्या है? अस्त्र-शास्त्रों की विद्या है, अणु परमाणुओं की पवित्र विद्या है। जो महर्षि भारद्वाज के आश्रम में भी थी। विश्वामित्र इस विद्या को जानते थे और ब्रह्मचारियों को भी इस शिक्षा देते थे।

विचार-विनिमय क्या? वेद का ऋषि कहता है कि यह संसार इस प्रकार की यज्ञशाला है, इसमें प्रत्येक मानव याग कर्म करने के लिए आया है, यागम् भवतम् यागम् ब्रहे याग ही हमारा जीवन है याग करना ही हमारा कर्त्तव्य है इसलिए यह संसार जो परमपिता परमात्मा ने रचा है यह एक प्रकार की यज्ञशाला है, यहाँ प्रत्येक मानव याग कर्म करने के लिए आया है। कैसा प्यारा याग है? कहीं मेरी प्यारी मातायें पुत्रेष्टि याग करती रही है। पुत्रेष्टि याग किसे कहते हैं? पुत्र को उत्पन्न करने वाली जो माता अपने पुत्र को गर्भ में महान् बना देती है वही पुत्र याग कहलाता है। यागम् ब्रह्मा वर्णस्थ सम्भवे वर्णम् सम्वते।

माता मलदाल्सा का पुत्रेष्टि याग

मुनिवरों! तुम्हें पुरातन काल में वर्णन किया था आज भी मुझे स्मरण आ रहा है। मेरे प्यारे! एक समय माता मदालस अपने में विचार विनिमय कर रही थी। वह उद्गीत गा रही थी कि मैं पुत्रेष्टि याग करना चाहती हूँ। मनुवंश में उनका संस्कार हुआ। जब संस्कार हो गया तो उन्होंने अपने पति देव से कहा, हे प्रभु! मैं पुत्रेष्टि याग में रत्त रहना चाहती हूँ। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम। मलदाल्सा ने कहा कि मैंने संस्कार से पूर्व आपसे संकल्प लिया थाकि हमारी सन्तान को पाँच वर्ष तक मेरी शिक्षा होगी, पाँच वर्ष पश्चात् तुम्हारी शिक्षा होनी चाहिए। मनु वंश के राजा ने यह वाक्य स्वीकार कर लिया। स्वीकार करने के पश्चात् माता मलदाल्सा के गर्भ स्थल में कुछ समय के पश्चात् शिशु का प्रवेश हो गया तो माता अपने में विचार रही थी कि हे बाल्य! हे आत्मा!, तेरी रक्षा करने वाले तो

देवता जन है, मैंने यह वैदिक साहित्य में अध्ययन किया कि माता के गर्भ स्थल में जब शिशु का प्रवेश हो जाता है तो रक्षा करने वाले सर्वत्र देवता होते हैं। वह देवता कितने भव्य हैं। कोई देवता अमृत दे रहा है, कोई देवता प्रकाश दे रहा है, कोई देवता गुरूतव दे रहा है, कोई देवता आपोमयी ज्योति दे रहा है कोई देवता तेजोमयी ज्योति दे रहा है कोई देवता गति दे रहा है। कोई देवता बनकर उसमें वह गमन कर रहा है। देवताओं की देवी (मलदाल्सा) यह उद्गीत गा रही है। कि हे! आत्मा हे! शिशु, तेरी रक्षा माता नहीं कर सकती। माता तो उस गृह में वास करती हैं जहाँ तू पनप रहा है। वह जड़वत् कहलाता हैं। प्रभु, देवताओं की सहायता लेकर निर्माण करता है। माता के कैसे भव्य विचार हैं कैसी भव्य उसकी कल्पना है। अपने बाल्यों को अपने मन की वार्त्ता को वर्णन करा रही है। तुम्हारी माता तो परमपिता परमात्मा है, मैं तो अमृतवान् हूँ। मैं तो केवल निमित्त मात्र कहलाती हूँ। देवता और माता वे परमपिता परमात्मा है। जब वह मेरे गर्भ में प्रवेश कर रहा है तो मैं कोई इसकी रक्षा नहीं कर सकती, क्योंकि मैं तो उस प्रभु के, उस माता के गुण ही गाँ सकती हूँ जो सबकी माता है, परम देव हैं वह माता (मलदाल्सा) कहती है, हे! बाल्य चन्द्रमा तुझे अमृत दे रहा है, वह देवता है वह द्यौ से अमृत लाता है और तुझे प्रकाश में लाने का प्रयास करता है। चन्द्रमा समुद्रों से परमाणु को लाता है, वह तुझे अमृत दे रहा है। वे देवताम् मानों, अग्नि तुझे उष्म बना रही है और पृथ्वी तुझे गुरूतव की आभा प्रदान कर रही है। अमृतम भवताम् ब्रह्मे

आपोमयी में तो तेरा ओढ़न रहता है। हे! आत्मा, हे! शिशु जिसमें तू वास करता है वही आपों कहलाता है। आपो ही पासे बने हुए है, वही तेरा ओढ़न बना हुआ है, वही तेरा बिछौना बना हुआ है तू उसी में वास कर रहा है इसीलिए यज्ञमान यज्ञशाला में विराजमान होकर तीन आचमन करता है, कहता हे कि आतम् ब्रहे। मानो तू श्री को देने वाला है, तू अमृत है, तू ही तो मेरे में वास कर रहा है। तू ही आपों मेरा ओढ़न है, तू ही मेरा बिछौना, तू ही मेरे पासे बनकर है उसमें ही मैं पनप रहा हूँ, उसी में मेरी प्रतिभा रहती है। वे परमपिता परमात्मा विज्ञान में रत्त रहने वाला हैं। वैदिक ऋषि कहता है, कि माता मलदाल्सा ने कहा है, हे आत्मा! वेदम् ब्रह्मा वेद प्रवाह कृतम् देवतम्।

प्रकाश

वही तो प्रकाश को देने वाला है, वह प्रकाश में रत्त हो रहा है। माता मलदाल्सा यह प्रार्थना कर रही है, आत्मा तू जब संसार में इस पृथ्वी माता वसुन्धरा के गर्भ में आता तो ब्रह्मवेत्ता बन करके आना। मेरे गर्भ से ब्रह्मवेत्ता बनकर आओ, माता मलदाल्सा के गर्भ से कुछ समय पश्चात् शिशु का जन्म हुआ। वह बाल्य जब पृथ्वी की गोद में आ गया तो माता मलदाल्सा कहती, हे! माता, तू अपने शिशु को अपने में धारण कर, अब तक मैंने इसको अपने गर्भ में धारण किया है और देवताओं की उपासना की और देवताओं ने इसकी रक्षा की हैं जब तेरा कर्त्तव्य है कि इसे अपने में धारण कर। पृथ्वी के गर्भ में आकर, इसी में रत्त रहकर कोई वैज्ञानिक बन जाता है। माता याग कर रही है, अपने मे विज्ञानशाला में विद्यमान हो करके बालक को ब्रह्म विद्या प्रदान कर रही है। हे! आत्मा, हे! शिशु यह ब्रह्म क्या है? वही ब्रह्म है तो तेरी रक्षा कर रहा है, वही ब्रह्म है जो तुझे अनुशासन में ला रहा है। वही ब्रह्म है जो उत्पत्ति के मूल में था, जो तेरे संग संग रहने वाला है, मानो देखो, सर्वज्ञ है, सर्व शक्तिमान है, महानता में रमण करने वाला वही तो तेरा प्रभु है, उसी की तुझे उपासना करनी है। तुझे संसार के क्षेत्र में प्रवेश नहीं होना हैं माता इस प्रकार ऊर्ध्वा में गति करने लगती है तो वह ऊर्ध्वा जो साधम ब्रहे तो वह ब्रह्मवेत्ता बाल्य को पाँच वर्ष की आयु तक ऊर्ध्ववेत्ता बना देती है। माता ने जब पुत्रों! को ऊर्ध्ववेत्ता बनाया तो तीन पुत्र ऊर्ध्ववेत्ता बन गये। तीन पुत्र जब ऊर्ध्ववेत्ता बन गये, वे ब्रह्म की आभा में रमण करते हुए ऊर्ध्वा में गान गाने लगे। ब्रह्म की आभा में निहित रहे। ब्रह्म की आभा में रमण करते हुए। ब्रह्म वर्त्ता अश्वतम् वाचस्वतम् ब्रह्मः।

ब्रह्म के संरक्षण में रमण करते हुए पाँच वर्ष की आयु में ब्रह्मवेत्ता बनकर भयंकर वनों में तपस्या करने चले

गये। ब्रह्मज्ञान होना उसी काल में सार्थक होता है, जब कि ब्रह्म का बोध हो। सर्वज्ञ हो तपस्वी तपों में निष्ट बन जाए और परमपिता-परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान में रत्त हो जाएं। परमात्मा की आभा में निहित होकर, अपनेपन में ही वह दर्शन करने लगे। वह बाल्यम ब्रहे। जब माता के तीन पुत्र ब्रह्मवेत्ता बन गये, और ऊर्ध्वा को प्राप्त हो गये। एक समय जब चतुर्थ व्रेतु राजा ने कहा, हे देवी! यह राज्य कैसे चलेगा? हमारा मनुवंश का बड़ा विचित्र राज्य चला आ रहा है, यह राज्य कैसे चलेगा जब यह सब सन्यास को प्राप्त हो जाएंगे। तो माता मलदाल्सा ने कहा हे राजन! अब का यह पुत्र राजा बन जाएगा, परन्तु तब मैं इसके पश्चात् संसार में नहीं रहना चाहूँगी। राजा तो मौन हो गये, माता मलदाल्सा ने विचार किया कि इस आत्मा को कोई शिक्षा नहीं देनी है। मेरे प्यारे! पुत्र माता के गर्भ में पनप रहा है। राष्ट्रीय विचार आ रहे हैं। राष्ट्रीय विचार आ करके, नाना प्रकार की तरंगों में वह बाल्य पनप रहा है। जब माता के गर्भ से पृथक हुआ तो राष्ट्रीय विचारों में पनपने लगा। पनपने के पश्चात् माता आगे सन्तान को जन्म देने के लिए संकल्प बध्य हो गयी। आचार्य के समक्ष उसने एक संकल्प किया था, कि-प्रभु! यदि मैं गृह में प्रवेश हो गयी, तो ब्रह्मवेत्ता सन्तान को जन्म दूंगी। यदि सन्तान ब्रह्मवेत्ता नहीं होगी और मेरे पति ने मेरी वार्त्ता का उल्लंघन किया तो उसके-एक सन्तान को जन्म देकर मैं परलोक को चली जाऊँगी। यह माता मलदाल्सा ने आचार्य के समीप संकल्प किया था। यही उसने राजा से कहा। भगवान जब यह बाल्य १२ वर्ष का ब्रह्मचारी हो जाएगा, तो उस समय मैं अपने शरीर को त्याग दूंगी।

माता मलदाल्सा का शरीर त्यागना

कुछ समय के पश्चात् वह बाल्य जब बारह वर्ष का हो गया। बारह वर्ष का हो जाने के पश्चात् एक आसन पर वह बाल्य है, एक पर अपने राजा को, माता मलदाल्सा ने कहा, भगवान विराजिए। अब मैं अपने परलोक को जा रही हूँ जहाँ से मेरा आना हुआ है, भगवान अव मैं वही जाना चाहती हूँ। राजा ने कहा, हे देवी! आप जा रही है, राष्ट्र का क्या बनेगा? उन्होंने कहा, भगवन! मैं नहीं जानती राष्ट्र का क्या बनेगा। राजा ने कहा हमारा क्या बनेगा? उन्होंने (मलदाल्सा) कहा-प्रभु! हे राजन्! जो प्रतिज्ञा मैंने की है उस संकल्प को नहीं त्यागूंगी। यह संसार कहाँ जाता है, संसार की क्या गति होती है इसे मैं नहीं जान पायी। परन्तु मेरा एक ही संकल्प है, जो मैंने आचार्य के चरणों में विद्यमान होकर के संकल्प किया है, वह संकल्प पूर्ण हो गया है और मैं, मेरे उस संकल्प के आधार पर शरीर त्यागना चाहती हूँ। उन्होंने प्राणायाम किया। प्राण, आपान और उदान की पुट लगाकर समान को एकाग्र करती हुई उन्होंने गायत्री छन्दों का पठन-पाठन करते हुए और साथ में वर्णियों का उन्होंने वर्णन करते हुए प्राण का अग्रित किया, निरोध करने के पश्चात्, कुम्भक, रेचक, प्राणायाम की गतियों में लाकर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया और यह कहा, देवम् ब्रह्मा, देवम् ब्रह्मे, देवम् गायत्री, देव सम्भवा देवता ब्रहे।

शरीर त्याग दिया। राजम् ब्रहे शरीर त्यागने से पूर्व अपने पुत्र के कण्ठ में एक वार्त्ता नृत्य करा दी थी कि यह संसार निसार है। यह उद्गीत गाते हुए अपने शरीर को त्याग दिया। राजा बड़े व्याकुल हुए। परन्तु यह पुत्रम् भवेत् प्राणम् ब्रहे पुत्र और पतिदेव ने उनका संस्कार किया। संस्कार के पश्चात् अपने वृत्तियों में उन्होंने पुत्र को राज्य देकर स्वयं भयंकर वनों में चले गये। राजा तपस्या के लिए तपश्चर में भी जाकर, भयंकर वन में, कुछ समय तपस्या करके अपने शरीर का प्राणान्त कर दिया।

ऋषि-मुनियों की मर्यादाओं एवम् परम्पराओं की महत्ता

वह राजा राज्य करता रहा। वह राष्ट्र में इतना तल्लीन हो गया कि राष्ट्र को नहीं त्याग रहा था। उन्होंने ऋषि-मुनियों की मर्यादा अथवा परम्परा जो थी उन परम्पराओं का उल्लंघन किया। उल्लंघन करने के पश्चात् भी वह राष्ट्र को नहीं त्याग रहा था। उनका गृहस्थ आश्रम सम्पन्न हो गया और वानप्रस्थ भी उसी स्थली पर चला गया और वे सन्यास स्थलियों में परिणत हो गये। मेरे प्यारे! त्राही-त्राही हो गयी। मनु ने जो राष्ट्र का निर्माण किया था,

राष्ट्र का तो उन्होंने कहा था देखो, ब्रह्मचर्य है, गृह है, गृह के पश्चात् वानप्रस्थ है उसके पश्चात् सन्यास है। सन्यास में जाकर राजा को परमात्मा का चिन्तन करना है। राजा जब इतना त्यागी और तपस्वी हो जाता है तो वही राष्ट्र और समाज उन्नत बनाता है। जो राजा अपने चौथेपन को भी राष्ट्र में समाप्त कर देता है वह राजा नहीं कहलाता है। मानो वह राष्ट्र नहीं कहलाता है। वह तो देखो, मर्यादा का उल्लंघन करना हैं। परमात्मा के क्षेत्र में अपने को, अपनी मर्यादा को नष्ट कर देना है।

ऐसा स्मरण आ रहा है मुनिवरों! जब त्राही-त्राही हो गई तो महापुरूष जो तपस्वी-मुनि थे उनमें भी त्राही-त्राही हो गई क्योंकि राजा अपने राष्ट्र को नहीं त्याग रहा है। वे जो तीनों सन्यासी थे माता ने जो सन्यासी बनाएं थे। उनके पास जाकर ऋषियां ने पुकार की आपाम् ब्रहे कि तुम भी उस माता मलदाल्सा के पुत्र हो, तुम्हारा वह राजा भी माता मलदाल्सा का पुत्र है उस सन्यास के मार्ग पर गमन कराओ। उन्होंने इस वाक्य को स्वीकार किया। तीनों तपस्वीयों ने जाकर राजा विभूति से कहा, प्रभु अपने राष्ट्र को त्यागिये। त्यागकर सन्यास को प्राप्त कीजिए जिससे त्राही-त्राही समाप्त हो जाए। वह राष्ट को नहीं त्याग रहा था। न त्यागने का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने स्वयं दूसरे राजा से प्रार्थना की कि इस पर आक्रमण करो। राजा पर आक्रमण किया गया और आक्रमण के पश्चात् उस राजा को कारागार में स्थित कर दिया गया। जब वह कारागार में पहुँच गएं तो जो माता मलदाल्सा की वर्चस्व थी जो उसने उनके कण्ठ में नृत्य की थी उस वर्चस्व को अपने सम्मुख लाए। संसार भूतम् वर्णा ब्रहे भूतम्।

वेद का यह शब्द कि यह संसार निसार है, इसमें कोई सार नहीं है। माता के दो शब्दों में उसके जीवन का परिवर्तन हो गया। उन्होंने कारागार के सेवकों से कहा, जाओ, राजा से कहो कि मैं राष्ट्र को त्याग रहा हूं मैं सन्यास को प्राप्त होना चाहता हूँ। जब यह पुकार होने लगी तो तीनों सन्यासियों ने उनके ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर और राजा ने राष्ट्र को अपनी स्थलियों से प्रदान करते हुए सन्यास को प्राप्त हो गये। ब्रह्मज्ञान के लिए भयंकर वन में प्रभु का चिन्तन करने के लिए चले गये।

ऋषियों और दार्शनिकों का मनतव्य

मेरे प्यारे! चिन्तन करना ही मानव का कर्त्तव्य है वही मानव को महान् बनाता है। विचार विनिमय क्या? आज तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूं। वैदिक ऋषियों और दार्शनिकों ने कहा है कि यह संसार एक प्रकार की यज्ञशाला है इसमें प्रत्येक मानव याग करने के लिए आया है। जितना भी सुकर्म है वह सर्वत्र एक प्रकार का याग माना गया है। सन्तान को जन्म देना भी एक याग है, जो भयंकर वनों में ब्रह्म का चिन्तन करते हैं वह भी एक याग है। मेरे पुत्रों! देखो, संसार यह एक प्रकार की यज्ञशाला है। इस यज्ञशाला में हम सब विद्यमान है। आओ, मेरे प्यारे! मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूं। मैं कोई व्याख्याता नहीं केवल तुम्हें परिचय देने के लिए चला आया हूँ और परिचय यह है कि परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए, परमपिता परमात्मा की महती को जानते हुए अथवा उसकी महानता में रमण करते हुए संसार सागर से पार हो जाएं।

विचार यह प्रारम्भ हो रहा था कि संसार एक प्रकारकी यज्ञशाला है। दार्शनिक कहते हैं कि संसार एक प्रकार का कल्प वृक्ष है और यह संसार देने लेने की व्यापारशाला है। यही संसार की यज्ञशाला, यही देखो, एक प्रकार की चिन्तनशाला और विज्ञानशाला है। यही हमारे यहाँ मृत्युशाला कही जाती है। यह मृत्युलोक है। लोक कहते है, जहाँ हम वास करते हैं ऋषि-मुनि कहते है प्रत्येक वाक्य पर विचार विनिमय करना हमारा कर्त्तव्य है। हम याग में परिणत होते हुए याग की महिमा को जानते हुए संसार सागर से पार हो जाए।

जीवन का उद्देश्य

आज के विचारों का मनतव्य यह है, कि परमपिता परमात्मा के गुणगान गाते हुए, उनकी देवतव की महिमा को अपने में धारण करते हुए संसार-सागर से पार हो जाए। हमारे जीवन का उद्देश्य माना गया है। नाना प्रकार की

विद्यायें वैदिक साहित्य में आती रहती है। आज मैं बेटा! यदि इन विचारों का वर्णन करूं तो बहुत समय की आवश्यकता है। समय मुझे प्राप्त होता रहेगा तो मैं उन विद्याओं का वर्णन करता रहूँगा।

आज के विचारों का अभिप्रायः यह है कि परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है वह सर्वज्ञ है, उसकी महिमा को अपने में धारण करने वाले महिमावादी बनते जाते है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि परमपिता परमात्मा की महिमा और उसके महान् ज्ञान विज्ञान में रत्त होते रहे। यही हमारा कर्त्तव्य है। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन होगा। २१ अप्रैल, १९६० मोदीनगर।

११ आत्मा का विष्णु स्वरूप २८ ०१ १९९२

जीते रहो, देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी मे उस महामना परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है। क्योंकि उसकी जो महती है, वो चहुं दिशाओं में ओत-प्रोत है। और एक-एक कण मानो उस परमपिता परमात्मा की उस महती में पिरोया हुआ है, मानो उसी में वो रत्त रहने वाला है। तो विचार आता रहता है, कि परमपिता परमात्मा हमारा जो देव है, वह महादेव कहलाता है। देवताओं का भी देवता है। हमारे आचार्यों ने इसीलिए कहा है कि उस महादेव की उपासना करो, वह हमारे अन्तर्हृदयों में विद्यमान रहता है और वह मानो उसी की प्रतिष्ठा में प्रतिभाषित हो रहे हैं तो विचार आता रहता है कि हम परमपिता परमात्मा की उस महती को जानते रहें जिस महती के कारण ये जगत् अपनी आभा में निहित हो रहा है। हमारा वेद का मन्त्र! उस परमपिता परमात्मा को विष्णु के नाम से वर्णन कर रहा है। आत्मां भूत् विष्णु रतप्रवा आत्माः।

आत्मा एवम् प्राण

वेद का वाक्य कहता है कि आत्मा विष्णु है। और विष्णु कहते हैं, जो पालना के मूल में विद्यमान है। मैं तुम्हें कई समय से विष्णु की विवेचना अथवा उन वार्त्ताओं कों प्रकट कर रहा हूँ जिनमें उन परमपिता परमात्मा की महती निहित है। और एक-एक वेद का मन्त्र मानो उसमें पिरोया हुआ हैं। हमारे यहाँ जैसे नाना प्रकार के पठन-पाठन का जो क्रम है, वह भिन्न-भिन्न प्रकार की कृतियों में रत्त रहा है। जैसे हमारे यहाँ जटा पाठ है, घन पाठ, माला पाठ, विषर्भ पाठ, उदात्त, अनुदात्त, नाना प्रकार से वेदमन्त्रों का गान गाया जाता है, परन्तु वह गान गाता है, तो प्राणों को जानता है, और जो प्राणों को नहीं जानता वह गान भी नहीं गा सकता। क्योंकि जो ये जानता है, कि प्राण को अपान में ले जाना है, और अपान को प्राण में ले जाना है और अग्नि इनके मध्य में विद्यमान है, तो वह प्राणेश्वर गान गाता है और वह कैसा गान गाता है? वह ऐसा गान गाता है, जिससे मानो नगरों की दीपावली बन जाती है। गृहों की दीपावली बन जाती है। तो बेटा! देखो, भौतिक और आध्यात्मिक दोनों उसमें निहित हो जाते हैं। परन्तु ये विचारा जाता है कि हमारी आत्मा का नाम विष्णु है, उन्हीं वाक्यों पर तुम्हें ले जाना चाहता हूँ, क्योंकि विष्णु सूत्रों और प्रायः हमारे यहाँ उद्गीत गाया जाता है। क्योंकि जो पालना के रूप में विद्यमान है, उसका नाम विष्णु है, यह सर्वसिद्ध है, और थे विचारणीय प्रसंग है। जिसके ऊपर हमारे यहाँ ऋषि मुनि परम्परागतों से अपने में विचार विनिमय करते रहे हैं।

पालन कर्त्ता विष्णु

आज उन विचारों में मैं तुम्हें नहीं ले जाना चाहता हूँ, केवल विचार विनिमय ये हम उस-और आत्मा के दोनों के मिलन की चर्चा करते रहते हैं। हमारे यहाँ दोनों प्रकार के योगश्चरथ, यो में मानो परिणित हो जाता है साधना में रत्त हो जाता है। जब अमृतं ब्रह्माः विष्णुः जब ये आत्मा विष्णु के रूप में वर्णित की जाती है तो विष्णु ही तो पालन करने वाला है। जब तक इस मानव शरीर में, विष्णु विद्यमान रहता है, तो शरीर क्रियाशीलता में दृष्टिपात हो रहा है। ये देखो, मग्न भी होता है रुधन भी कर रहा है, मौन भी कर रहा है, और भी नाना प्रकार की कृतियों में रत्त रहता है। और विज्ञानवेत्ता भी है, ज्ञानी भी है, वही मानव है, उसमें इतने रूप माने गएं हैं तो वह रूप किस कारण से हैं क्योंकि आत्मा उसमें विद्यमान है। यदि आत्मा नहीं है तो विज्ञान है, परन्तु वह वैज्ञानिक नहीं रहा। ज्ञानी है परन्तु वह ज्ञान नहीं रहा, वो चेतना-बद्ध हो गया। वह दृष्टिपात करता हुआ भी नहीं कर रहा है

क्योंकि वो चेतना नहीं है।

विष्णु का स्वरूप

तो विचार आता रहता है, कि आत्मा का नाम विष्णु है, और हमें उस विष्णु की उपासना करनी है। और विष्णु स्वरूप बनना है। मुझे बहुत-सी वार्त्ताएँ स्मरण आती रहती हैं, मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय प्रकट कराया कि ये विष्णु तो अक्षय क्षीर सागर में रहता है और अक्षय क्षीर सागर में नारद गन्धर्व गान गाता है। नारद वीणा का स्वामी है, और लक्ष्मी चरणों में ओत-प्रोत है। तो मेरे प्यारे! देखो, इन्होने मुझे वर्णन कराया एक समय विचारना यह है कि हम अक्षय क्षीर सागर किसे कहते हैं? अक्षय क्षीर सागर कहते हैं जहाँ अक्षय ब्रहा जो मृत्यु से पार होता है। वो अक्षय क्षीर सागर है, जहाँ जा करके मृत्यु का भय नहीं होता। तो मुनिवरों! देखो, ज्ञान और विवेक का नां है मेरे प्यारे! देखो, गन्धर्व नाम मन अपनी वीणा को ले करके चंचलता रूपी जो वीणा है उसे त्याग देता है और गन्धर्व जो बुद्धि है वो नाना प्रकार का गान-गाने वाली है। कहीं बुद्धि से मुनिवरों! देखो, विज्ञान की परख में मानव प्रथित हो जाता है, कहीं मानो प्रज्ञा में प्रवेश करके उसका अनुभव करने लगता है क्रिया में लाता है, कही ऋतम्भरावी बन करके ज्ञान करके, मौन हो जाता है। कहीं बेटा! प्रज्ञावी बनकरके वो चेतना में चेतना का मिलान करने लगता है। जब इतने सूत्र जब बनते हैं तो वो किस कारण है क्योंकि आत्मा विद्यमान है विष्णु है। और यदि आत्मा रूपी विष्णु नहीं होगा तो मानो ये चेतना में चेतना का भास नहीं कर सकेगा।

आत्मा विष्णु स्वरूप कैसे बने

तो विचारना ये है कि अक्षय क्षीर सागर में वे लक्ष्मी चरणों में ओत-प्रोत हैं, किस समय ओत-प्रोत होती है? बेटा! एक समय महर्षि याज्ञकाचार्य के आश्रम में विद्यमान था और महर्षि याज्ञकाचार्य से यह प्रश्न हो रहा था कि महाराज! ये आत्मा विष्णु कैसे बनता है? तो उन्होंने कहा, जानने से। परन्तु अन्तरात्मा में संतुष्टि नहीं हुई। न होने के कारण, उन्होंने कहा चलो, विभाण्डक जी के द्वार पर गमन करते है अब ये विभाण्डक के द्वारा पहुँचे, तो महर्षि विभाण्डक से कहा कि महाराज! ये आत्मा विष्णु कब, किस काल में बनता है? उन्होंने कहा जब ये जगत को विजय कर लिया जाता है, तो जगत को विजय करने मात्र से ही अन्तवा भूतं ब्रह्मः! आत्मां दिव्यां देवत्वां लोकाः मानो देखो, आत्मा विष्णु है और अक्षय क्षीर सागर मे किस समय होता है इसके ऊपर बेटा! एक ऋषि की अपनी टिप्पणियाँ हैं।

सहज योग मूलाधार चक्र

ऋषि का अपना मन्तव्य है और वह कहता है कि जब ये योगेश्वर प्राण का अभ्यास करता है और प्राण को अपान में प्रवेश करता हुआ आत्मा को जो समन्वय होता है प्राणों के साथ में, वह मूलाधार में होता है और मूलाधार में जब ये गमन करने लगता है मानो देखो, मूलाधार में इसको छोडा तो पृथ्वी के विज्ञान को क्रियात्मकता में लाने का प्रयास करता है।

नाभिचक्र

जब मूलाधार से ऊर्ध्वा में गमन करता है तो नाभि चक्र में आ जाता है, जहाँ वायु वेग से गमन करता है और वायु वेग से गमन करके प्राणों का रूप बन जाता है, प्राणों की पृथकता हो जाती है, तो वह जब मुनिवरों! देखो, नाभि केन्द्र ये शरीर का मध्य कहलाता है जैसे यज्ञशाला इस संसार का, ब्रह्माण्ड का मध्य कहा जाता है जानते-जानते बेटा! एक प्रश्न आया, कि संसार की नाभि क्या है? संसार की नाभि याग है? और मानव की नाभिनाम्यां जहाँ वायु का वेग गमन करता हो जहाँ वायु अपनी वृत्तियों में रत्त रहने वाली हो तो उसे नाभिचक्र कहते हैं और नाभिचक्र का जो समन्वय होता है वह इड़ा पिंगला सुषम्ना से निपायमान होता है और वह उसी से चक्रिका बन करके आत्मा उसका अनुभव करता रहता है।

हृदय चक्र

उसके पश्चात् उर्ध्वा में जब गमन करता है, तो इड़ा पिंगला के साथ में यही मुक्त आत्मा हृदय चक्र में प्रवेश करता है, जहाँ संसार की जितनी भी वस्तुएँ हैं, सब हृदय में समाहित हो जाती हैं। एक मानव मोह कर रहा है, वो वहाँ से अनुभव कर रहा है, उसकी जो प्रतिष्ठा है वो हृदय में हैं, श्रद्धा कर रहा है वह भी हृदय में है, पत्नी को दृष्टिपात कर रहा है, उसका समन्वय हृदय से है, माता को दृष्टिपात कर रहा है उसका समन्वय भी हृदय से है, ज्ञानी बन रहा है, ज्ञान की प्रतिष्ठा भी हृदय में है, तो हृदय जो चक्र है, बेटा! ऐसा है। चक्र उसे कहते है जो गमन करता है, मानो जो गतिवान रहता है उसी में जब बेटा! आत्मा विद्यमान होता है इड़ा पिंगला सुषम्ना के साथ में, तो ये आत्मा भूतं ब्रह्मेः संसार में जितनी भी वस्तुएँ चाहे वो विज्ञान रूप में हैं, चाहे वे मौलिक रूप में है का सबका समन्वय बेटा! हृदय से होता है। हृदय से हृदय का जब मिलान होता है, तो हृदयग्राही हो जाता है। एक समय एक माता से प्रश्न किया, हे माता! तेरा हृदय क्या है? तो वह कहती है कि मेरा हृदय तो मेरा पुत्र है। जब पुनः यह प्रश्न किया कि हे माता! तेरा हृदय क्या है? तो वह ज्ञानी थी उसने कहा कि मेरा जो हृदय है वो संसार की जानकारी है। तब पुनः प्रश्न किया कि माता तेरा हृदय क्या है? वह कहती है कि जितना संसार का प्रकृति मण्डल है, वह सब मेरा हृदय कहा जाता है।

मेरे प्यारे! देखो, हृदय की बड़ी विचित्र विवेचना है, क्योंकि इसी में सर्वत्रता विद्यमान रहती है, हृदय को जब उदार बनाया जाता है, तो यह हृदय उदार हो जाता है। हृदय में जब क्रोध की मात्रा आती है तो ये हृदय कठोर बन जाता है। यही हृदय पाठक बन करके पाठ्यक्रम में परिणित हो जाता है। ये हृदय की जो वृत्तियाँ है, ये बड़ी विचित्र हैं, मेरे प्यारे! देखो, उसे हृदय चक्र कहते हैं। चक्र इसलिए कहते हैं, भिन्न भिन्न रूप धारण करता रहता है मेरे प्यारे! देखो, नेत्रों से प्रकाश आता उसकी प्रतिष्ठा हृदय में हैं। श्रोत्रों से शब्द आता है, उसकी प्रतिष्ठा हृदय में है, और देखो, घ्राण से सुगन्ध आती है दुर्गन्ध आती है उसका निर्णायक भी हृदय कहा जाता है। हृदय से ही त्याग की भावना आती है और हृदय से ही बेटा! प्रजा से कहीं प्रीति आ रही है, कहीं दुरिता आ रही है, उसकी प्रतिष्ठा भी हृदय में विद्यमान है। रसना नाना प्रकार के रस हैं, कहीं मधु है, कहीं खटरस है, कहीं कसैला है, षटरस कहलाते हैं परन्तु उसका जो स्वादन है, वह भी हृदय में प्रतिष्ठित हो रहा है। इसीलिए बेटा! योगीजन हृदय को हृदयांग कहते हैं। विचारना ये कि हृदय से श्रद्धा है, हृदय से हृदय में ही तो श्रद्धा उत्पन्न होती है। और परमात्मा से हृदय का समन्वय होता है। तो मेरे पुत्रों! देखो, हृदय चक्र है ये चक्रिका की भांति, गमन करता रहता है, और गमन करता हुआ अब आगे गमन करता है हृदय चक्र को भी त्याग देता है तो कण्ठ में प्रवेश करता है।

कण्ठ-चक्र

मुनिवरों! देखो, जब कण्ठ चक्र में चला जाता है कण्ठाम् भूमे ब्रतहा वेदस्वतम् वेद का वाक्य कहता है कि कण्ठ ही तो हमारा सजातीय कहलाता है बेटा! कण्ठ में मेरी पुत्रियाँ आभूषणों को धारण करती है। किसलिए? क्योंकि ये जो कण्ठ है, इससे मानव का निर्माण है, जब माता के गर्भस्थल में हम जैसे शिशु होते हैं, तो वह जो आभूषण है स्वर्ण का आभूषण, मणियों का आभूषण बाल्य के शरीर से उसका समन्वय होता है। कण्ठ से समन्वय होता है। परन्तु माता का जो कण्ठ है वह जहाँ स्वर्ण से आभूषित होता है, वहाँ वह माता का कण्ठ बेटा! ज्ञान और विज्ञान से सुशोभित होना चाहिए, ज्ञानी होना चाहिए। देखो, माता का जो वास्तविक श्रृंगार है, वो ज्ञान है, विवेक है, और वही मणियों की माला है, वही स्वर्ण की माला कहलाती है। तो विचार आता है बेटा! कण्ठ इतना हमारा सजातीय होना चाहिए, कण्ठ चक्र कहा जाता है इसमें नाना प्रकार का ज्ञान हो करके जाता है जैसे ये रसना है नाना प्रकार के आहार करती रहती है परन्तु कण्ठ चक्र उसका मार्ग है और वह मार्ग बनकरके मुनिवरों! देखो, वह भौतिक कहलाता है।

तो विचार आता रहता है कि आत्मा रूपी जो विष्णु है, जब कण्ठ चक्र में प्रवेश करता है, तो बेटा! कण्ठिका और सजातीय बन जाती है। तो विचार आता है बेटा! जब मैं माता से प्रश्न करता हूं तो तेरा जो कण्ठ है वो किसके लिए है? तो माता कहती है कि मेरा कण्ठ मानो कण्ठ के लिए है। कण्ठ-कण्ठ के लिए कहलाता है। मेरे पुत्रों! देखो, वही परमाणु है जो निर्माणित कहलाए जाते हैं। जब माता अपने मधुर कण्ठ से, बाल्य को मधुर बना देती है मानो वह संसार को मधु बना देती है। और बाल्य को जब पुत्र को मधुर बना देती है तो वह मधुर में प्रवेश हो जाता है। मेरे पुत्रों! देखो, कण्ठ इतना प्रिय होना चाहिए जिस कण्ठ में मेरे प्यारे! आभूषण स्वर्ण के और मणियों के आभूषणों की प्रशंसा वहाँ उनके ज्ञान की प्रशंसा होनी चाहिए कि कितना माधुर्य कितना मधुर वाक्य उच्चारण किया। इससे मेरा अन्तर्हृदय प्रसन्न हो गया।

घ्राण-चक्र

तो मेरे प्यारे! देखो, जब ये आत्मा कण्ठ चक्र से जब घ्राण चक्र में प्रवेश करता है तो बेटा! देखो, पृथ्वी का जितना भी विज्ञान है पृथ्वी का पार्थिक जितना भी गुरूतव परमाणु में, वे सब उसके आधीन देखो, सब उसके संरक्षण में गमन करने लगता है, तो मेरे प्यारे! देखो, उसको स्वादिष्ट चक्र कहा जाता है जिसको घ्राण चक्र भी कहते हैं, घ्राणां भूतं ब्रह्मे जितनी घ्राणेन्द्रियाँ हैं, वे इन्द्रियाँ उसके संरक्षण में रहती हैं और संरक्षण में रहती है तो और वह विष्णु आत्मा, अपने क्रिया-कलापों में परिणित हो जाता है। हे आत्मा! तू विष्णु है! हे आत्मा! तू अक्षय क्षीर सागर में रहता है। तो मेरे प्यारे! देखो, घ्राणां ब्रह्म व्रतम।

त्रिवेणी-चक्र आज्ञा-चक्र

आगे चलकर देखो, तीन प्रकार की जो कृतियाँ कहलाती है जो मस्तिष्क में जिसे हम त्रिवेणी कहते है बेटा! त्रिवेणी किसे कहा जाता है? त्रिवेणी कहते है जहाँ तीनो नदियों का संगम होता हो, त्रिवाद होता हो, बेटा! वह इड़ा, पिंगला, सुषम्ना ये शरीर में तीन नदियाँ कहलाती है परन्तु बाह्य जगत में देखो, गंगा जमुना सरस्वती कहलाती हैं। मेरे प्यारे! देखो, गंगा जमुना सरस्वती और देखो, अम्रतम् इड़ा पिंगला सुषम्णा जब ये कृतिका में बेटा! प्रवेश करती हैं तो वहाँ तीनों नाड़ियों का समन्वय हो करके और एक अभ्रोत नाम की एक नाड़ी है उसका बेटा! जब समन्वय होता है तो कृतिका बन जाती है, और कृतिका बन करके बेटा! देखो, वहाँ एक स्वर ध्वनि होती है, और वह ध्वनि मुनिवरों! देखो, तीनों नाड़ियों की और अभ्रोत नाड़ी के सम्बन्ध में जब उनकी अनाद रूप में स्वर उत्पन्न होता है ध्वनि होने लगती है जिस ध्वनि को बेटा! योगेश्वर साधक मुनिवरों! देखो, अपने में पान करता रहा है अपने मे स्वर संगम में उसका समन्वय करता रहा है तो विचार आता रहता है कि मानो देखो, आत्मा विष्णु जब वह त्रिवेणी स्नान करता है, त्रिवेणी में मानो देखो, त्रिवर्धा बन जाता है तो बेटा! देखो, उसे त्रिवेणी कहा जाता है। हे विष्णु! तू त्रिविद्या को जानने वाला है, हे विष्णु! तू त्रि वेदों को जानने वाला है तू इसलिए विष्णु कहलाता है आत्मा उस काल में विष्णु कहलाता है जब बेटा! त्रिविद्या में वह परिणित हो जाता है और त्रिवर्धा बन जाता है योगेश्वर बन करके त्रिवर्त कहलाता है।

ब्रह्मरन्ध्र-प्रवेश

मेरे प्यारे! मैं इस सम्बन्ध में विशेषता में नहीं ले जाऊँगा केवल विचार विनिमय यह कि देखो, आत्मा का नाम विष्णु है और विष्णाम् भूतम ब्रह्मे अव्रतम् बेटा! देखो, जब यह कृतिका को त्याग देता है तो यह ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश कर जाता है। ब्रह्मरन्ध्र वहाँ होता है जहाँ शिखा का मध्य होता है। हमारे आचार्य जन जब ऋषि मुनि विद्यमान होते हैं तो कर्म काण्ड की पद्धतियों में बेटा! सबसे प्रथम वो शिखा को लेते है क्योंकि शिखा के निचले भाग में ब्रह्मरन्ध्र है और जब यह विष्णु रूपी आत्मा जब ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश हाता है तो इड़ा पिंगला सुषम्ना नाड़ियों का एक समूह विद्यमान हो जाता है वहाँ ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर विराजमान होने वाला विष्णु है और वह विष्णु जब

विद्यमान होता है तो मेरे प्यारे! देखो, वहाँ कमल डण्डी जैसी एक धारा उत्पन्न होती है और वह धारा उत्पन्न हो करके बेटा! उनका लोक लोकान्तरों से समन्वय होता है तो वह लोक लोकान्तरों का ज्ञानी बन जाता है योगेश्वर उनमें रमण करता है और तीन प्रकार की जो विद्या ज्ञान, कर्म, उपासना मेरे प्यारे! देखो, उसका वो स्वामित्व करता है वह उसको ऊर्ध्वा भाग में गमन करता हुआ ब्रह्मरन्ध्र में बेटा! चक्रिका गमन करती है और गमन करके वहाँ से एक मानो देखो, रसना के ऊर्ध्वा भाग में बेटा! एक रसास्वादन होता रहता है उस स्वादन को योगी अपने में पान करता रहता है और वह आत्मा, योगी आत्मा भूतम् विष्णु बेटा! देखो, उसका स्वादन करता रहता है और उसको अपने में स्वादन करके बेटा! उसमें अमृत का आनन्द लेता है वह मुनिवरों! देखो, मधु अग्रतम ब्रह्मे देवहा वह अमृत को पान करता रहता है उसी को सोम रस कहते हैं।

आत्मा का विष्णु स्वरूप

जो योगीजन बेटा! देखो, सोम रस को पान करते हैं। सोम कहते हैं बेटा! देखो, जहाँ मौन हो जाता है, सोम कहते हैं जहाँ आनन्द को आनन्द ही आनन्द प्राप्त करता रहता है, उस आनन्द का नाम सोम है। और सोम को पान करने वाला बेटा! विष्णु कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, वह उसका अक्षय क्षीर सागर है। वहाँ मन अपनी चंचल रूपी वीणा को ले करके शान्त हो जाता है। बेटा! वो प्रकृति रूप बन जाता है, और मुनिवरों! देखो, वहीं अप्रतम! वरुणसुताम् ब्रह्मा वह जो बुद्धि है जो चार प्रकार की विभक्त क्रिया में विभक्त हो रही थी, वह मानो देखो, गन्धर्व बन करके, गान गाना शान्त कर देती है, वह भी मौन हो जाती है मेरे प्यारे! वह प्रकृति रूप बन गया मन और बुद्धि के रूप में वह सब प्रकृति रूप बन गया है। सूक्ष्म बन गया है मेरे पुत्रों! देखो, ब्रह्मणे ब्रतहा और वह जो लक्ष्मी है जो संसार को लुभाने वाली है। संसार को अपने में धारण कर रही है, वह लक्ष्मी उसके चरणों में ओतप्रोत हो जाती है। योगी के चरणों में लक्ष्मी ही तो ओतप्रोत होती है। वह अपनी चंचलता को त्याग देती है, चरणों में नम्र बन जाती है। बेटा! देखो, वह जो लक्ष्मी है, जो संसार को भ्रमित कर रही है, संसार को लुभाने वाली है। कहीं क्रोध के द्वारा, कहीं काम के द्वारा, कहीं मोह के द्वारा, कहीं अभिमान के द्वारा, और कहीं तृष्णा के द्वारा, यही तो मुनिवरों! देखो, लक्ष्मी कही जाती है। ये नाना रूपों में परिणित हो करके मेरे पुत्रों! देखो, ये ठग लेती है। उसे अपनें में धारण करती है परन्तु देखो, वो लक्ष्मी चरणों में सब चंचलता को त्याग करके और वह चरणों में ओतप्रोत हो जाती है यह कहके, स्वामी मैं तुम्हारे चरणों में हूँ और मैं मानो देखो, क्षमा प्रार्थी हूँ।

आत्मा का नाम विष्णु

तो मेरे पुत्रों! देखो, विचार विनिमय क्या वे आत्मा विष्णु है जो अक्षय क्षीर सागर में गमन करता है, अक्षय क्षीर सागर नाम विवेक का है, जब ये ज्ञान में हृदय में अवृत्तियों में अष्टचक्र नौ द्वारो में, नौ द्वारो को जब ये जान लेता है तो इसे विवेक हो जाता है तो उसका नाम अक्षय क्षीर सागर है, अक्षय कहते हैं जहाँ किसी का विनाश नहीं होता, वह अक्षय है तो बेटा! देखा अक्षय क्षीर सागर है, जहाँ मुनिवरों! देखो, काम, क्रोध, मोह, लोभ इत्यादियों से उपराम हो करके और देखो, विष्णु बन करके वह ब्रह्मरन्ध्र में बेटा! अपनी कृतिका में गमन कर रहा है मेरे प्यारे! वही सुषम्ना को नीचे दबा करके उसमें रत्त है शेष नाग की शैय्या पर विद्यमान है वह शेष नाग क्या है बेटा! काम, क्रोध, लोभ, य पांचों शेष नाग हैं। और वह शेष नाग की शैय्या पर विराजमान होने वाला विष्णु है, गमन कर रहा है। परन्तु विश्वस्तप्रह्मः वही उसी में रत्त है तो उस आत्मा का नाम देखो, बेटा! देखो, उस अक्षय क्षीर सागर में वो आत्मा विद्यमान है। जो बेटा! अष्टचक्रों नौ द्वारो वाली जो अयोध्या पुरी है बेटा! देखो, उसमें विद्यमान होने वाला उस अयोघ्या में विष्णु है। मेरे प्यारे! वैदिक साहित्य में तो यौगिक वार्त्ता है, और एक वार्त्ता मुझे साहित्य की स्मरण आती रहती है, कि जब अयोघ्या का निर्माण हुआ था, तो भगवान मनु और कालेत्वर दोनों ने उस समय समुद्र के तट पर अयोध्या का निर्माण किया था और अष्ट चक्रों नौ द्वारो वाली पुरी का निर्माण

किया। जब भी किसी नगरी का निर्माण किया गया सबसे प्रथम तो वह अयोध्या थी। अयोध्या का इस प्रकार निर्माण किया जैसे परमापिता परमात्मा ने शरीर रूपी नगरी का निर्माण किया। बेटा! इसमें नौ द्वार हैं अष्ट चक्र हैं देखो, सबसे प्रथम उन चक्रों में देखो, ब्रह्मरन्ध्र है और ब्रह्मरन्ध्र से ले करके नाभि चक्र है जिसको हम मूलाधार कहते है मूलाधार चक्र है नाभि चक्र है हृदय चक्र है कण्ठ चक्र है स्वादिष्ट चक्र है और त्रिवेणी चक्र है, उसके पश्चात् देखो, ब्रह्मरन्ध्र कहलाया जाता है मेरे प्यारे! देखो, इसी प्रकार अयोध्या का निर्माण हुआ, और नौ द्वार है बेटा! देखो, दो चक्षु के द्वार हैं, दो घ्राण के द्वार हैं, और दो श्रोत्र द्वार हैं देखो, गुहा उपदस्थ दो द्वार ये नौ द्वारों वाली अयोध्या पुरी कहलाती है। ये परमात्मा का निर्माण किया हुआ, इसी को ले करके देखो, भगवान मनु ने कालेत्वर ऋषि ने मनु जी की सहायता ले करके, अद्ववा मनु जी की सहायता ले करके अयोध्या का निर्माण किया। इस अयोध्या पुरी में आठ चक्र और नौ द्वार कहलाते हैं। इन आठ चक्रों वाली और नौ द्वारों वाली पुरी में बेटा! देखो, विष्णु वास करता है।

मोक्ष प्राप्ति सहज

तो मुनिवरों! देखो, मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं, मैं यौगिक वाक्यों को और इतिहास के वाक्यों का दोनों का समन्वय करना नहीं चाहता हूँ। मेरे पुत्रों! परन्तु विचार विनिमय केवल यही है आज देखो, उस आत्मा का नाम विष्णु है, जो विष्णु देखो, अक्षय क्षीर सागर में रहता है, और वह शेष नाग की शैय्या बनाएं हुए। शेष नाग शैय्या कही जाती है काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह को नीचे दबा करके ही बेटा! ये आत्मा विष्णु बनता है योगेश्वर बन जाता है तो बेटा! मैं विशेष चर्चा न देता हुआ, केवल ये कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और विष्णु स्वरूप को जानते हुए इस सागर से पार होने का प्रयास करें, और आत्मा को विष्णु बनाएं। वेद का ज्ञाता जो होता है वह विष्णु है इसकी नाभि से कमल का जन्म होता है और कमल मुनिवरों! देखो, पंखुड़ियों वाला कहलाता है और देखो, कमल में से ब्रह्मा का जन्म होता है और वह ब्रह्मा कौन है बेटा! देखो, ब्रह्म विद्या का जन्म होता है, ब्रह्माण्ड द्यौ कृतम् ब्रह्मे व्रतम देवाः तो ब्रह्म विद्या को अपने में धारण करने वाली ही वह ब्रह्मा कहलाता है।

तो विचार विनिमय क्या मैं तुम्हें विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ विचार विनिमय केवल हमारा ये कि हम विष्णु आत्मा को जानें और आत्मा विष्णु जब तक रहता है जब तक इस शरीर में आत्मा विद्यमान है, तब तक ये अयोध्या पुरी भी है, और जब आत्मा चला जाता है तो देखो, वह विष्णु चला जाता है तो बेटा! देखो, अयोध्या भी खिण्ड भिण्ड हो जाती है, तो बेटा! देखो, विचारना केवल ये हमारा कि हम परमपिता परमात्मा के अनूठे जगत की अनूठी पुरी को जानने के लिए तत्पर हो जाएं और आत्मवेत्ता बनकरके प्रभु की महिमा को और वह जो महती है उसकी महती में रमण करते चले जाएं बेटा! उसके विश्वाव्रत लोकों में रत्त हो करके संसार सागर से पार होने का प्रयास करें आज मैं बेटा! तुम्हें विशेष विचार देने नहीं आया हूँ मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ केवल तुम्हें परिचय देने चला आता हूँ और वह परिचय केवल ये है कि हमें बेटा! योगेश्वर बनना चाहिए और वह विष्णु स्वरूप को अपनाना चाहिए जिसे वाह्य जगत और आन्तरिक जगत दोनों के हम वशिष्ट बन जाएं दोनों के ज्ञानवेत्ता बन जाएं। ये है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूंगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय ये कि परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और देव की महिमा का गान गाते हुए मानो देखो, विष्णु रूप को अपनाते हुए सागर से पार हो जाएं। तो ये है बेटा! आज का हमारा वाक्य अब मुझे समय मिलेगा शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूंगा। माछरा २८-१-९२